छठा बेटा

पात्र

पडित बसन्त लाल—रेलवे के रिटायर्ड पदाधिकारी

डाक्टर हँसराज हरिनाथ (हरेन्द्र) देवनारायण कैलाशपति गुरु नारायण दयालचन्द	पडित बसन्त लाल के छै लडके

मा	पडित बसन्त लाल की पत्नी
कमला	पडित जी की बहू, डाक्टर हस राज को पत्नी

दीनदयाल	पंडित जी का मित्र
चाननराम	दूर के रिश्ते मे पडित जी का भाइ

हरचरण मुङ्गू	नौकर

डा० हसराज का मकान (जो वास्तव में डा० हसराज का किराये का मकान है) कुछ इतना बड़ा नहीं। पूरा मकान भी यह नहीं। एक बड़ी इमारत का केवल एक भाग है— तीन कमरे हैं (यद्यपि शब्द 'कमरे' उन १२ × ११ फुट की दो, तथा १० × ८ फुट की एक कोठरी के लिए अधिक आदरसूचक प्रतीत होता है।) एक स्नानगृह है (जो सीढ़ियों के नीचे बच जाने वाली छोटी-सी जगह में, तख्ता रूपी किवाड़ लगा कर बना दिया गया है और जहां नहाने में दक्ष होने के लिए कुछ दिन अभ्यास करना अनिवार्य है।) इसी स्नानगृह के साथ छोटा सा रसोई-घर है— बस यही साढ़े तीन अथवा पौने चार कमरे डा० हसराज के इस मकान में है।

ऐसे ही चार भाग इस इमारत में और हैं। पूंजीवादी मनोवृत्ति से विपन्न कृषकों को बचाने के लिए, जब पंजाब सरकार ने साहूकारा बिल की कैंची का आविष्कार किया और चाहे अस्थायी रूप ही से हो, किसानों के फंदे काट दिये, तो उस मनोवृत्ति ने नये फंदे ढूंढ़ निकाले। यद्यपि उन फंदों के शिकार अब कृषक न होकर निम्न-मध्य-वर्ग के नागरिक थे। इन्हीं फंदों को मध्यवर्गीय शिक्षित समुदाय की भाषा में पोर्शन्ज़ (*Portions*) अर्थात् बड़ी इमारतों के किराय पर चढ़ाये जाने वाले भाग कहा जाता था। और पंजाब की राजधानी में ऐसी इमारतों की कमी न थी, जिन में ऐसे दस दस फंदे निर्मित थे।

पर्दा डा० हसराज के मकान, अर्थात् पोर्शन के बरामदे में खुलता है। बरामदा भी इस पोर्शन के अनुरूप ही है। रसोई-घर तथा स्नान गृह इस के दायीं ओर को है, सामने १२×११ फुट के दो कमरे है, जिन का एक एक दरवाज़ा बरामदे में खुलता है। इन दोनों सामने के कमरों में से दायें हाथ के कमरे और स्नान गृह के मध्य एक मार्ग है, जो इमारत के दूसरे पोर्शनों के पास से होता हुआ इमारत के बड़े दरवाज़े को जाता है। १०×८ फुट का कमरा बरामदे के बायीं ओर को है, और आजकल वह डा० साहब के सब से छोटे भाई गुरु की अध्ययनशाला का काम दे रहा है। रसोई घर का और इस का दरवाज़ा आमने सामने है।

यह बरामदा घर में एक महत्व का स्थान रखता है और प्रायः इस से खाने, बैठने और सोने के कमरों का काम लिया जाता है। बरामदा डाइनिंग रूम है— इस का प्रमाण रसोई-घर से तनिक हट कर बिछी हुई दो चटाइयां देती हैं, जिन पर घर के सब लोग बैठ कर अपनी बारी से खाना खाते हैं, किन्तु जिस पर इस समय (मैदान ख़ाली देख कर) गणेशवाहन श्री मूषक जी महाराज मटरों अथवा टमाटरों पर दांत तेज कर रहे हैं। ड्राइंग रूम अर्थात् बैठने के कमरे के नाते एक बैत का हल्का सा मेज़ और बैत ही की दो कुर्सियाँ बरामदे के मध्य पड़ी है। मेज़ पर एक क़लम-दवात भी रखी है। स्लीपिंग रूम—सोने के कमरे — के नाम पर तनिक बायीं ओर को हट कर, गुरु के कमरे के समीप, एक चारपाई बिछी हुई है।

समय क्या है, इस का अनुमान ही लगाया जा सकता है। बात यह है कि अपने समस्त महत्व के होते इस बरामदे को अभी तक एक क्लाक भी प्राप्त नहीं हुआ और जो छोटा टाइमपीस गुरु की अध्ययनशाला में मेज पर टिक-टिक किया करता है, उस की आवाज यहा सुनायी नहीं देती। इसलिए समय का पता रसोई-घर से आने वाली सुगंधि,

अथवा मेज कुर्सियों से लेकर चारपाई तक एक बड़ी सी तिकोन बनाने वाली धूप ही से लगाया जा सकता है।

लेकिन फ़रवरी का आरम्भ है, इसलिए धूप पर विश्वास नहीं किया जा सकता। दिन बड़े हो रहे हैं, जहा धूप आने पर पहले दस बजते थे, अब वहा आठ बजे ही धूप आ जाती है, इसलिए इस ओर से निराश होकर हमें रसोई-घर की ओर नाक तनिक फुला कर सूघने का प्रयास करना होगा। पकती हुई सब्जियों की सुगधि धूप की पार्श्व-भूमि के साथ बता रही है कि अभी नौ, पौने नौं से अधिक समय नहीं हुआ।

बरामदे में इस समव निस्तब्धता छायी हुई है। वास्तव में गुरु की आज पहली दो घटिया खाली है और वह अपने कमरे में अध्ययन कर रहा है, नहीं तो इस समय तक वह आकाश-पताल एक कर दिया करता है और बेचारे बरामदे के फ़र्श को, जो अहिंसा के मामले में सोलहों आने महात्मा गाधी का अनुयायी है, कई बार उसके पदप्रहार, अथवा यों कहिए कि बूटप्रहार को सहन करना पडता है। डाक्टर साहब भी जो इस समय तक—"मैं कहता हूँ, मैंने एक पेशेंट को समय दे रखा है", या "कभी समय पर खानामुझे मिलेगा या नहीं" अथवा "जल्दी करो नहीं तो बिना खाये पिये मैं चला जाऊंगा" आदि वाक्यों के गोले रसोई-घर पर बरसाते हुए बरामदे में घूमा करते हैं, इस समय इमारत के बाहर चाचा चाननराम के साथ घूम रहे हैं। चाचा डाक्टर साहब के सगे चचा तो नहीं, शरीके में से हैं, लेकिन अपना कोई चचा न होने से डाक्टर साहब और उनके सब भाई उन्हें चचा ही सा मानते हैं। इसीलिए उन पर अपना कुछ अधिकार समझते हुए, एक विशेष मिशन को लेकर वे उनके पास आये हैं और उन्हीं की खातिर डाक्टर साहब ने नौकर को दुकान पर भेज दिया है कि यदि कोई रोगी आ जाय तो उन्हें तत्काल सूचित किया जाय।

बरामदे में निस्तब्धता ऐसी है कि चटाई पर 'किट किट' करते हुए चूहे की आवाज़ साफ़ सुनायी देती है। इस निस्तब्धता को हम उत्सुकता भरी निस्तब्धता कह सकते हैं। ऐसा मालूम होता है कि बरामदे के स्तम्भ, मेज़, कुर्सियां, चारपाई, यहां तक कि धूप भी कुछ सुनने के लिए उत्सुक है, दर्शकों की उत्सुकता भी, लगता है, क्रोध की सीमा को पहुँचा चाहती है, इसीलिए शायद डाक्टर हंसराज चचा चाननराम के साथ इस निस्तब्धता और उत्सुकता को मिटाते हुए, स्नान गृह के पास वाले दरवाज़े से बातें करते दाख़िल होते हैं।]

डा० हंसराज : *ये सौगंधें* (व्यंग से हँसते हैं।) *भूले से कही गयी बात का इनसे अधिक मोल होता है।*

चाननराम : *मुझसे उन्होंने प्रण किया था।*

डा० हंसराज : (व्यंग्य से) *सौगंध भी खायी होगी।*

चाननराम: (चुप!)

(चारपाई पर जाकर बैठ जाते हैं।)

डा० हंसराज : (दोनों हाथ कमर पर रख कर शब्दों पर ज़ोर देते हुए) *यही तो मैं कहता हूँ। जब पहले के प्रण और सौगंधें अभी तक पालन की बाट देख रही हैं तो अबकी कब पूरी होंगी।*

[हंसते है और जैसे उन्होंने इस बात से चाचा को निरुत्तर कर दिया हो, आराम से कुर्सी पर बैठ जाते हैं और टाँगें मेज़ पर रख लेते हैं।]

चाननराम : (जो चाचा हैं, आख़िर यों हारने वाले नहीं) *पर भाई, समय भी तो अब बदल गया है।*

डा० हंसराज : (बेपरवाही से सिर हिला कर, जैसे इस बात का उत्तर तो गढ़ा गढ़ाया है) *पर स्वभाव तो समय के साथ नहीं बदलता।*

[जिनकी प्रतिज्ञाओं, सौगंधों और स्वभाव का ज़िक्र हो रहा है वे डा० हंसराज के पिता लाला बसन्त लाल के अतिरिक्त कोई दूसरे नहीं। अभी अभी वे रिटायर हुए हैं और

छठा बेटा

पाँच छै सहस्र का ऋण चुका कर प्रावीडेंट-फंड से जो रुपया बच गया था, वह दो चार सप्ताह ही में उन्होंने सट्टे, जुए और शराब की भेंट कर दिया है और गुरदासपुर छोड कर यहाँ अपने बड़े लडके के पास आ गये हैं। जीवन में दूरदर्शिता किस चीज का नाम है, यह उन्होंने कभी नहीं जाना। छै जिसके लडके हों, उसे भविष्य की चिन्ता हो, इससे विचित्र बात वे और कोई नहीं समझते रहे। बड़े गर्व से, सीना फुला कर, वे मित्रों के सामने सदैव कहते आये हैं कि यदि हरेक लड़का दिन भर टोकरी ढो कर भी एक रुपया साझ को कमा लायगा तो छै रुपये हो जायँगे, फिर मैं क्यों चिन्ता करूँ ? लड़कों के टोकरी ढोने की नौबत नहीं आयी, क्योंकि किसी न किसी प्रकार, अपने पिता की मद्यपता के होते हुए भी उन्हों ने शिक्षा प्राप्त कर ली है। डा० हंसराज सब से बड़े हैं और डाक्टर हैं। दूसरे सुपुत्र लेखक हैं—एक छोटा-सा प्रेस तथा मासिक-पत्र चला रहें हैं, नाम हरि नाथ है, किन्तु हरेन्द्र कहाना अधिक पसन्द करते है। तीसरे देव नारायण, छावनी के डाकखाने में काम करते है। चौथे अबोहर में टिकट क्लर्क लगे हुए हैं। नाम कैलाश पति है। कैलाश के पति और इनमें इतना ही अन्तर है कि ये तीसरी आँख से नहीं देखते। पाँचवाँ गुरु है, बी ए. में पढ़ता है, परिश्रमी है और उसके बडा आदमी बनने के स्वप्न सब लिया करते हैं। डा० हंसराज किसी आगामी सहायता के विचार से नहीं तो इसी ख्याल से कि वे अपने रोगियों के सामने इस बात का उल्लेख बड़े गर्व-स्फीत स्वर में कर सकेंगे कि वह जो सब-जज या मैजिस्ट्रेट या डिप्टी है, मेरा ही भाई है, मैंने ही उसे पढ़ाया है, अपने इस पोर्शन का १० × ८ फुट का वह कमरा उसे दिये हुए हैं और उसके खाने का खर्च भी सहन किये जा रहे हैं। छठा और सब से छोटा लडका पिता के व्यवहार से तंग आकर जो भागा तो उसने चार

वर्ष से कोई खोज-खबर नहीं दी। दो चार गालियों के साथ—'वह साला मेरा लडका ही नहीं'—इतना कह देने के सिवा, पिता ने उसका कभी जिक्र नहीं किया। भाई भी लगभग उसे भूल चुके है इस लिए कि यदि वह होता तो उसकी पढाई आदि की व्यवस्था भी उन्हें ही करनी होती (और यदि अब वह कहीं आ जाय तो डा० साहब तो इतने प्रसन्न हों कि एक दिन उनके घर खाना न पके) हाँ माँ कभी कभी रो लिया करती है। नाम भी भला-सा था—दयाल चन्द या कृपालचन्द, किन्तु इन पाच वर्षों में घर वालों को वह भी भूल-सा गया मालूम होता है।—इसलिए दयाल चन्द को (क्योंकि उसका कुछ पता नहीं) छोड कर शेष सब टोकरी नहीं ढो रहे, परन्तु उनके पिता को चिन्ता अवश्य करनी पड रही है और चचा चाननराम उनकी ही सिफ़ारिश करने आये हैं'—रिटायर हो गये हैं, पास पैसा नहीं रहा। अब कहां रहें, यह समस्या है। चचा चाननराम का विचार है कि डाक्टर साहब के पास ही उनका रहना श्रेयस्कर है, क्योंकि गुरदासपुर में रहेंगे तो उनके मित्रादि आ मिलेंगे, यहाँ रहेंगे तो कुछ सुधरे रहेंगे परन्तु डाक्टर साहब ने टागें हिलाते हिलाते निर्णय कर लिया है और वह निर्णय चचा चाननराम को सुनाने के लिए टागें नीचे करके वे उठ कर बैठ गये है।]

डा० हंसराज: *देखिए चचा जी, मैं डाक्टर हूँ। मेरी पोज़ीशन है। मेरे यहाँ बडे बड़े पदाधिकारी आते है। पिता जी की गुज़र यहाँ न होगी।(तीन चार दिन उन्हें यहाँ आये हुए हो गये हैं और इस बीच में मेरी रात की नींद हराम हो गयी है और मैं सोचने लगा हूँ कि यदि कुछ देर और वे मेरे पास रहे, तो मेरी सब प्रेक्टिस चौपट हो जायगी) भाग्य से आज आप आ गये है। देव और गुरु भी यहीं है, हरेन्द्र को मैंने बुलावा भेजा है (कैलाश किसी समय भी पहुँच सकता है। कल उसका पत्र आया था कि वह कल प्रातः की*

गाड़ी से आयगा (कलाई पर घड़ी देखते हुए) गाड़ी कब की स्टेशन पर पहुँच चुकी होगी और ..।

चाननराम : *परन्तु....*

डा० हंसराज : *परन्तु नहीं चचा जी। इस बात का निर्णय आज हो ही जाना चाहिए। मै अपने उत्तरदायित्व से कन्नी न काटूगा, किन्तु मेरे यहा सदैव के लिए उनका रहना नही हो सकता।*

चाननराम : *आखिर..... .*

डा० हंसराज : (जैसे वे डा० बिधान चन्द्र राय से क्या कुछ कम हैं) *मै डाक्टर हूँ। मेरी पोज़ीशन है मेरे यहा बड़े बड़े पदाधिकारी आते हैं। मैं वेटिग रूम में तिनका तक तो रहने नही देता (खड़े हो जाते हैं।) और ये कीचड भरे जूते लिये आ जाते हैं।*

[कुर्सी से चटाई तक और चटाई से कुर्सी तक दोनों हाथ पतलून की जेबों में डाले एक चक्कर लगाते है— फिर रुक कर :]

मैं नौकर तक को मैले कपडे पहन कर दुकान मे आने की आज्ञा नही देता और वे टखनों तक ऊंची-धोती —वह भी आधी—मैली-सी खुले गले की क़मीज पहने, नंगे सिर चले आते है और वैसे ही कौच में आकर धँस जाते हैं।

[फिर कुर्सी से चटाई तक और चटाई से कुर्सी तक चक्कर लगाने लगते है।

गुरु अपने कमरे से हाथ में एक खुली पुस्तक लिये तेज़ तेज़ दाखिल होता है। दोनों टकराते टकराते बचते हैं। दोनो एक दूसरे को थामते है और डाक्टर साहिब कुर्सी तक अपना चक्कर पूरा करने और गुरु रसोई-घर को छूने चल देता है]

गुरु : (रसोई-घर के दरवाजे को छूकर) *भाभी.....(दरवाजे को खोल कर सिर अन्दर करते हुए) मै कहता हूँ, मेरे जाने में मात्र एक घटा रह गया है ।*

[कुछ क्षण उसी तरह खड़ा रहता है फिर सिर बाहर निकाल कर और मुड कर—जब कि डाक्टर उसी तरह सिर नीचा किये, पतलून में हाथ डाले कुर्सी से चटाई की ओर जा रहे है —]

— : *लीजिए पिता जी आटे की बोरी लेने गये हैं, तो आ चुका आटा ।*

(बेजारी से सिर हिलाता है)

[गुरु पतला दुबला, पांच फुट साढे पाच इच का युवक है—रग गेहुआ, बाल लम्बे और चमकीले, लेकिन माथा बिल्कुल छोटा—खड़े कालरों वाली कमीज और पतलून के बावजूद, शकल-सूरत से ज़रा भी मालूम नहीं होता कि यह डिप्टी कमिश्नर मैजिस्ट्रेट, सब-जज छोड मुख्तार भी बन सकेगा । किन्तु भाग्य अपनी विभूतिया देते समय शक्ल सूरत कम ही देखता है । बहुत से सुन्दर मातहत युवक इस बात को भली-भाँति समझते हैं । और इस समय तो डाक्टर साहब भी भूल गये हैं कि उनका यह भाई कभी डिप्टी होने जा रहा है, क्योंकि वे उसकी बात का उत्तर दिये बिना फिर कुर्सी की ओर चल देते हैं । जहाँ कि चचा ने इस बीच में उनकी आपत्ति का उत्तर सोच लिया है :]

चाननराम : *कपडों का तो हो सकता है । उन्हें तुम लोग नये कपड़े.....*

डा० हसराज : *कदापि नहीं हो सकता । सफ़ाई का स्वभाव भी दूसरी आदतों की भाँति एक समय चाहता है, बनते बनते बनता है । उनमें और हममें आधी सदी का अन्तर है ।*

गुरु : (भावी आई० सी० एस०) वे मूछें रखते हैं, जिन पर नीम्बू टिक सके और हमारे ऐसा भी मालूम नहीं होता कि दैव ने उन्हें कभी पैदा भी किया था। वे सिर घुटा कर रखते है—चटियल मैदान की भाँति, और हम दो दो महीने इस मामले में नाई को कष्ट नहीं देते, वे कमीज और तहबद पहन अनारकली में घूम सकते हैं और हम सोते मे सूट उतारने से हिचकचाते है।

[चाननराम 'तुम अभी बच्चे हो तुम्हारी यह चचलता क्षम्य है' के से भाव में हँसते है।]

डा० हसराज : (छोटे भाई की सहायता को आते हुए) हँसी की बात नही चचा जी ! बचपन का स्वभाव एक दिन में नही बदल सकता। एक दिन में वे अपने पुराने सस्कारों को छोड़ कर सभ्य-समाज के आचार-व्यवहार नहीं सीख सकते। वे पिताओं और पतियों के ईश्वरीय-अधिकारों (*Divine Rights*) में विश्वास रखते है। उनके विचार में लड़का चाहे डाक्टर छोड़ गवर्नर भी क्यों न हो जाय, पिता के मिलने पर तत्काल उसे उनके चरणों में झुक जाना चाहिए, फिर चाहे वे बाज़ार मे अथवा स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही क्यों न खड़े हों और कितने भी प्रतिष्ठत मित्र क्यों न उन के साथ हों।

गुरु : और पिता की गाली सुनकर उसे चुप खड़े रहना चाहिए अथवा ऐसे मुस्कराना चाहिए जैसे उस पर फूल बरस रहे हों।

चाननराम : माता पिता की गलियाँ तो घी शक्कर सी मीठी होती हैं। जिसे ये नही मिली वह जीवन में एक विभूति से वंचित रह गया है।

(दोनों भाई जोर से कहकहा लगाते हैं)

चाननराम : (अप्रकृतिस्थ हुए बिना) रही प्रणाम की बात तो भाई माता पिता के चरणों में झुकना संतान की अपनी प्रतिष्ठा है।

मुझे उन मित्रों की मानसिक अवस्था पर तरस आता है जो इस पर नाक-भौं चढ़ाते है।

गुरु : चाहे बाजार हों अथवा स्टेशन का प्लेटफार्म ?

चाननराम : कहीं भी क्यो न हो, तुम तो भला उनके लडके हो और उनके चरण ही छूने पर इतनी बातें बना रहे हो, मेरे साथ जानते हो क्या हुआ ? दीनदयाल .

डा० हसराज : (जेब से कुजियों का गुच्छा निकालकर उसे अगुलियों पर घुमाते हुये) दीनदयाल. ...!

चाननराम : हाँ वही, एक दिन उसके साथ बाज़ार में पण्डित जी चले जा रहे थे। आते आते सब्जी-मण्डी के ठेकेदार की जेबें गर्म करते आये थे। मैने दोनों को हाथ जोड़कर 'नमस्ते' की। कहने लगे—'नहीं', झुककर प्रणाम करो। मेरे साथ मेरे मित्र भी थे, किन्तु मै चुपचाप उनके चरणों पर झुक गया।

गुरु : छिः।

चाननराम : फिर कहने लगे, इनके भी पाँव छुओ !

डा० हसराज : (गर्जकर, जैसे उनसे ही कहा गया हो) दीनदयाल के ?

चाननराम : पर मै झुक गया और वे इतने ही में प्रसन्न हो गये।

डा० हसराज . (क्रोध से दाँत पीसते हुये) उस जेबकटे के पैरों पर, जिसे यदि मेरा बस चले तो.. .. ...

[तिपाई को ठोकर मारते हैं, जैसे वही दीनदयाल है, सियाही की दवात फर्श पर गिर पडती है। नौकर को आवाज देते हैं।]

— : हरचरण हरचरण !

[एक छोटा सा नौकर रसोई से प्याज छीलता छीलता निकलता है।]

नौकर : जी, उसे तो आप ने दुकान पर भेजा था।

डा० हसराज : (चपत लगा कर) तुझ से किसने कहा, इस तिपाई पर दवात रखा कर, उठा सब फर्श खराब हो गया है।

(नौकर दवात उठाने लगता है।)

चाननराम : दवात रहने दे बेटा, पहले कपड़ा लेकर फर्श साफ़ कर डाल।

[नौकर भाग जाता है और फिर गीला कपडा लाकर फर्श साफ़ करता है।]

गुरु : (रसोई-घर की ओर देख कर) माँ अभी मुझे कितनी देर और प्रतीक्षा करनी पडेगी ?

[मा रसोई घर से हाथ पोंछती हुई आती है—दुर्बल तथा कृशकाय, चेहरे पर दुखों ने गहरे चिह्न छोड दिये है। पुराने फैशन की कमीज और सुथनी पहने है, सिर पर चादर है— बस सब मिला कर वह ऐसी है, जैसी एक मद्यपाथी की स्त्री निरन्तर उसके साथ सर्दी गर्मी झेलने, उसकी और उसके बच्चों की सेवा करने से बन जाती है।]

मां : हमारी ओर से तो बेटा कोई देर नहीं। सब्जी तो बस तैयार है आटा खत्म हो गया था और बनिये के घर रात को तीन बच्चे एक साथ पैदा हुए।

गुरु : तीन...एक साथ ...पिता, पुत्र तथा पौत्र, तीनों के ?

मां : नहीं नहीं केवल पिता के— दो लडकियाँ और एक लड़का।

डा० हसराज : उस काटे से व्यक्ति के यहाँ ? और पत्नी भी तो उसकी तिनका सी है !

मां : इस लिए उसकी तो दुकान बन्द थी, तब उनको भेजा कि सब्ज़ी-मडी के चोक से जाकर आटा ले आयँ।

गुरु : 'सब्ज़ी-मडी के चौक से ! तब तो मैं शौक से होटल में खाना खा सकता हूँ।

डा० हसराज : मुझे डर है कि कहीं सभी को आज होटल में न जाना पडे। और कोई नहीं था आटा लाने के लिए ?

मा : मैने तो बहुतेरा कहा कि गुरु या देव ले आयगा। कहने लगे—मै यहाँ बैठा बैठा क्या कर रहा हूँ और कमला ने नोट उनके हाथ में दे दिया।

डा० हसराज : नोट ! कितने का।

मा : दस का !

(डाक्टर साहब कुर्सी में धँस जाते हैं।)

—. (निराश-भाव से) इस कमला को तो कभी समझ न आयगी।

कमला . (सामने के कमरे से निकलती है।) मैंने कहाँ दिये। उन्होंने तीन बार कहा—लाओ बहू रुपये दो, लाओ बहू रुपये दो, लाओ बहू रुपये दो; गुरु को पढ़ने दो; उसकी परीक्षा समीप है; मै बस अभी ले आऊँगा।

(बड़े रौब से मटकती हुई चली जाती है।)

डा० हसराज : (अचानक उठ कर और दोनों मुट्ठियाँ इकट्ठी भींच कर, महान विटप की भाँति झूलते हुए, शब्दों पर जोर देकर) यह नहीं होगा, यह नहीं होगा। देखिए चचा जी, कुछ रुपये महीना मै दे सकूँगा— जो भी आप मेरे जिम्मे लगा देंगे, किन्तु रहना उनका यहाँ नहीं हो सकता।

चाननराम : लेकिन पिता पुत्र.....कर्तव्य . .

डा० हसराज . (विटप पर झंझा का दबाव और भी अधिक हो जाता है और वह और भी झूलता है) मै पुत्र के कर्तव्यों से भली-भाँति परिचित हूँ, किन्तु पिता का कोई कर्तव्य ही नहीं, यह मैं नहीं मानता। सात वर्ष के कडे परिश्रम के बाद मेरी प्रेक्टिस कुछ चलने लगी है, मै उसे यों बर्बाद नही कर सकता। परसों जब वे पिये हुए आये और बाज़ार ही से उन्होंने अधिक मद्यपता के कारण थरथराती हुई अपनी कर्कश आवाज़ में पुकारा "ह सू"! तब मेरा तो दिल धक धक कर उठा था। बाहर आकर देखा— बूटके तस्मे खुले हैं, धोती की कोर धरती पर लटक रही है, कमीज का गिरेबान फटा हुआ है

और पगडी बगल में है (विटप पर तूफान का जोर कम हो जाता है ।) *किस्मत अच्छी थी कि उस समय दुकान पर कोई पेशेन्ट न था, बडे धैर्य के साथ मै उन्हें घर ले आया ।*

[पेन उस वक्त बाहर से देव आकर चुपचाप दरवाजे की चौखट से पहलू के बल खडा हो जाता है । आयु अट्ठाइस वर्ष से अधिक नहीं, लेकिन डाकखाने की बैठक ने उसे बत्तीस, पैंतीस का बना दिया है । चेहरे की दो-चार रेखाएँ 'डिलिवरी', 'बुकिंग', 'सार्टिंग' की विरसता का पता देती है, जिन विभागों में कि वह क्रम से अब तक काम करता आया है । दाढी मूछें बडी हुई है, इस लिए नहीं कि उसे ये पसन्द हैं, बल्कि इसलिए कि उसे हजामत का समय नहीं मिला । हँसमुख है, किन्तु अब उसकी हँसी ऐसे ही ठिठुरी हुई प्रकट होती है, जैसे शरद् के बादल भरे आकाश में पीली श्वेत सी सूरज की मुस्कान । किसी को भी उसके आने का पता नहीं चलता, इसलिए डाक्टर साहब अपनी बात जारी रखते हैं ।]

— : *और पुकारने का ढग तो देखो—न हंसराज, न हंस* (नकल उतारते हुए) *हसू* (जो विटप था वह पौधा सा होकर धरती पर लेट जाता है ।) *और मैं दो बच्चों का बाप हूँ और डाक्टर कहलाता हूँ ।*

[व्यगमयी वेदना के भार से हँसते हैं । वहीं चौखट के साथ खड़े खड़े देव के चेहरे पर वही शरद् का सूरज क्षण भर के लिए मुस्कराता है ।]

चाननराम : (वहीं जमे हुए) *माता पिता बच्चो को उनके बचपन का नाम.....*

डा० हसराज : *नहीं चचा जी, यह मुझ से न होगा, आप देव से क्यों नहीं कहते ।*

[दरवाजे में सूरज का तेज क्षण भर के लिए प्रखर हो उठता है ।]

देव : *जिससे उनकी एक दिन तो दूर, एक पल के लिए भी नहीं बन सकती।*

[सब चकित से उसकी ओर देखते है । शरद् का सूरज उनके समीप आ जाता है ।]

डा० हंसराज : (खिन्न हुए बिना) *तुम दिन भर दफ्तर में रहते हो और दफ्तर भी तुम्हारा समीप नहीं कि वे पहुँच जायँ, पूरे छै मील है— नहर के पार . .*

देव : *लेकिन रात को तो मैं घर आता हूँ और रात ही को साधारणतया मेरे इन बालो को देख कर उन्हें गुस्सा आया करता है। जब पिता जी बहराम के स्टेशन पर थ, तब मेरा दुर्भाग्य कि एक दिन मै सध्या की ट्रेन से वहाँ चला गया। रेलवे गार्ड के सामने ही उन्होंने मुझे बालो से पकड लिया—'ये हीजडो की भाँति बाल क्यों बना रखे हैं तुमने. . ' और पुरुषत्व और पुसत्व पर एक भाषण झाडते हुए मेरी जो गत बनायी.. ..*

चाननराम : (अपनी धुन के जो पक्के हैं, स्थिरि, अचल जहाँ बैठे है वहा से हिले नहीं ।) *तब तुम बच्चे थे, परन्तु.....*

देव : *परन्तु जिनके लिए डाक्टर साहब अभी तक 'इॅसू' है, उनके लिए बेचारा देव. ....*

(शरद् का वही सूरज हँसता है ।)

— : *और फिर रात ही को उन पर गाने की धुन सवार होती है। एक बार मुझ से कहने लगे—"तुम गाओ"। अब मैं क्या गाता ? विवश हो चिघाड़ने लगा। आँखों में मेरी आँसू भर आये। कहने लगे—अच्छा गाते हो, प्रेक्टिस जारी रखो, तुम्हें लखनऊ के म्युज़िक कालेज में दाखिल करा देंगे।*

[गुरु ठहाका मारकर हँस पडता है । हँसराज डाक्टरों की भाँति हँसते हैं, देव के चेहरे से मात्र बादल तनिक से

हट जाते है, चचा चाननराम कदाचित इसलिए नहीं हँसते कि बच्चों की हँसी में क्या शामिल हों ..

[हरचरण एक बिस्तार और बैग उठाये प्रवेश करता है।]

डा० हसराज : *कैलाश आ गया ?*

हरचरण : *दुकान पर है जी, मैने कहा—आप तनिक बैठें कोई रोगी ही आ जाता है। आप उसे बैठाइए . ...*

डा० हंसराज : *मैं जाता हूँ।*

माँ : (रसोईघर का दरवाजा खोलकर) *गुरु तनिक साइकल लेकर जाना तो। वे तो आये नहीं। देखो तो कहाँ ठहर गये ? नहीं जा तू ही वहाँ से कुछ आटा ले आ, कैलाश भी तो आगया है।*

गुरु : *होंगे कहाँ ? सब्ज़ी मडी में एक ही तो जगह है उनके जाने की।*

[हरिनाथ (हरेन्द्र) प्रवेश करते है— हाथ में कुछ कागज लिये और फर्श पर इधर उधर देखते और कुछ ढूढते हुए। धोती कुर्ता और उस पर चादर पहने हैं, बाल तनिक लम्बे है और पाँवों में चप्पल हैं।]

हरिनाथ : *मैं पूछता हूँ, रात को मै इधर तो नहीं रख गया।*

(तिपाई के नीचे ऊपर देखते है।)

चाननराम : *क्या ढूँढ रहे हो, क्या चीज़ गुम हो गयी।*

हरिनाथ : *बडे परिश्रम से लिखी थी।*

(फिर इधर उधर देखते है।)

देव : *क्या था भाई ?*

हरिनाथ : *एक कविता थी। देर से मै लिख रहा था, कितनी अच्छी बन रही थी, मुझे तो याद भी नहीं।*

चाननराम : *तनिक बैठो कविता फिर लिख लेना।*

हरिनाथ : पर मुझे तो वह भेजनी थी। कम्पोजिटर बेकार बैठे है, साइकल पर भागा आया हूँ।

चाननराम : मैं साइकल पर देव को भेज दूँगा। इन पन्द्रह मिनटों में कुछ बिगड न जायेगा। मै तो बुलवाने ही वाला था तुम्हें। अच्छा हुआ कि तुम आगये।

हरिनाथ : मै कहता हूँ, वह गुम कहाँ हो गयी, वह कविता—छै महीने हो गये मुझे उसकी 'थीम'* सोचते।

गुरु : कोई प्रबधकाव्य शुरु किया था क्या ?

हरिनाथ . नही जी एक फुलस्केप के दोनो ओर लिखी हुई थी।

(हताश सा बरामदे के मध्य खडा हो जाता है।)

देव : यह आपके हाथ में क्या है ?

हरिनाथ . (चौक कर खिसियानेपन से) वाह ! अरे मै इस बीच में इसे बराबर हाथ में लिये फिरा हूँ !

देव . (कविता उसके हाथ से लेकर) आप तनिक बैठें चाचाजी को आप से दो बातें करनी है। कविता मै अभी नौकर के हाथ भिजवा दूँगा।

(चला जाता है, हरिनाथ कुर्सी पर बैठ जाता है।)

चाननराम : देखो तुम्हारे पिता अब रिटायर होगये है। मै नहीं चाहता, वे घर पर रहें। वहाँ उनके पराने यार-दोस्त हैं, वहाँ वे न सुधरेंगे !

हरिनाथ : वहाँ वे सुधर चुके। शादीराम, रामरत्न, बनारसीदास, बंसीलाल — सब मतवाले, लेकिन दूसरों के माल पर, हमारे पिता जी अपना घर फूंक कर तमाशा दिखाने वाले।

चाननराम : यही तो मैं भी कहता हूँ। उन्हे आवश्यकता है अच्छी सगति की और फिर ऐसे व्यक्ति की, जो उनकी अच्छी तरह देख भाल कर सके। (गुरु और देव तो बच्चे हैं। हंसराज का मन उनसे न मिलेगा। कैलाश के सम्बन्ध में मैं कह

* थीम = (*Theme*) आधार-भूत-विचार !

नहीं सकता। वह अक्खड तबीयत का आदमी है। मै उसे कहूँगा अवश्य, परन्तु तुमसे मुझे बडी आशा है। तुम समझदार हो, साहित्यिक हो, मानव के गुण दोषों से परिचित हो तुम्हारे पास ...(हरिनाथ चौकता है।) . वे कुछ सम्हल .

हरिनाथ : (दार्शनिक भाव से तनिक हँस कर) अब वे क्या सम्हलेगे।

चाननराम : तुम्हारे पास रह कर

हरिनाथ : मेरे पास, परन्तु मै तो सात्विक व्यक्ति हूँ। वे ठहरे खाने पीने वाले आदमी। वे चौथे रोज़ मुर्ग भूनने वाले और फिर मदिरा (मुँह बनाता है, जैसे नाम ही से उसका चित्त मिचलाने लगा हो) मै तो पास भी नहीं बैठ सकता, मै तो उस कमरे में बैठना तक सहन नहीं कर सकता।

[जैसे शराब के नाम ही से उसका दम घुटने लगा हो, उठ कर घूमता हुआ, धोती के पल्ले से हवा करने लगता है।

डा० हसराज और कैलाश पति ज़ोर ज़ोर से बातें करते प्रवेश करते है।]

कैलाश : बख्शो बी बिल्ली चूहा लँडूरा ही भला। मुझसे उनकी एक दिन, एक दिन क्या, एक पल नही पट सकती। मै उनकी एक गाली तक नहीं सुन सकता। गाली तो दूर एक बार उन्होंने मुझे **Idiot* कहा था और मैने तीन दिन खाना न खाया था . .

डा० हंसराज : अरे भई अब पिछली बातो को.... .

कैलाश : आप भूल सकते है वे सब बाते, मै नहीं भूल सकता। याद है न आपको, उस दिन उनकी कितनी ज़्यादती थी। घर में खाने को नहीं था और वे बीस रुपये (जो माँ उधार लाया थी) किसी श्रेष्ठ-व्यक्ति को दे आये थे (तनिक जोश से) उनके लिए प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठ है। केवल घर वालों को

**Idiot*=मूर्ख

छोड़ कर। और जब मैंने आपत्ति की की थी तो तलवार लेकर मेरी ओर दौड़े थे। (नौकर को आवाज देता है।) ओ मुड्डू ...ओ मुड्डू... ..

(हरचरण रसोई-घर से प्लेट धोता धोता आता है।)

— : साबुन और तेल स्नानगृह में रख दे। यह लम्बी यात्रा और सम्मा सट्टा लाइन की यह धूल! मैं तो बर्बर लग रहा हूँगा।

[छै भाइयों में यद्यपि वह चौथा है तो भी वह अपने उस कवि और उस क्लर्क भाई से बड़ा लगता है। चौड़े जबड़े, टेढ़े मेढ़े दान्त और आखों में हिंस्र ज्वाला— बिखरे हुए, धूल भरे बालों पर—जिनसे वह सत्य ही बर्बर लगता है—हाथ फेरता हुआ वह इधर उधर घूमता है।]

चाननराम : उठकर, उसके पास जाकर, उसके कंधे पर हाथ रखते हुए) परन्तु कैलाश .....

कैलाश : परन्तु नहीं चचा जी। मै कुछ नहीं कर सकता! मैं पूछता हूँ—उन्होंने हमारा कितना ख्याल रखा है? बे-बाप के बच्चे हम से अच्छी तरह पलते होंगे और फिर उनके अत्याचार.. ...

चाननराम : परन्तु बेटा .. .

कैलाश : (घूमते हुए दात पीसकर) अब आप चाहें भूल जायँ, मैं जीवन भर नहीं भूल सकता वे सब बातें! पता है न आपको? टाइफाइड से मै मृत-प्रायः हो रहा था। मल्लू पोते, से बुआ का लड़का बैजनाथ आया था। तब इन्होंने क्या ऊधम मचाया था।

चाननराम : पुरानी बातों को.....

कैलाश : पर मेरे लिए तो वे सब नयी हैं। इतनी सी बात थी न कि बैज नाथ ने आते ही पचास रुपये माँ को दिये कि वह उन्हे अपने पास रखे। जाते जाते वह उन्हें ले जाता। दीवाली के दिन थे। पिता जी को न जाने कैसे उनकी गंध

मिल गयी। लगे मा से रुपये माँगने। उसने कहा कि मेरे पास एक भी रुपया नहीं। आप ही कहिए दूसरे के रुपयों को वह कैसे उन्हें दे देती। उठा कर जलती लालटैन इन्होंने उसके दे मारी। मैंने रोका तो तलवार उठा लाये। मेरे सिरहाने लम्बी छुरी वाला हटर था। सौभाग्य से बीच-बचाव हो गया, नहीं तो किसी का खून हो जाता।

चाननराम : (निराश होकर) *परन्तु बेटा, अब तो न उनका वह स्वभाव है, न वह शरीर। दम खम भी उनमें वह पुराना नहीं। अब ये सब बातें वे कहाँ कर सकते हैं. .....!*

डा० हंसराज : (हसकर) *पर स्वभाव तो वही है।*

गुरु तथा देव : (दोनों एक साथ बोलते हुए) *वाणी की कठोरता तो वही है। शराब पीने की आदत तो वही है।*

[नशे में चूर प० बसन्तलाल प्रवेश करते हैं। पाँव लडखडा रहे हैं। सिर नगा है। कमीज के बटन खुले हैं। तहमद धरती पर लटक रहा है। एक पाँव से जूता ग़ायब है। हाथ में एक पुर्जा सा है (जो लाटरी का टिकट है) आवाज थरथरा रही है.....]

बसन्तलाल : *ओ हसू..... ..*

[डा० हंसराज आग्नेय-दृष्टि से उनकी ओर देखते हैं और आग भरे स्वर में कहते हैं :—]

डा० हंसराज : *आप तो आटा लेने गये थे।*

बसन्तलाल : *साला .....आटा क्या ?.....मै तीन लाख रुपये का टिकट ले आया हूँ। तुम्हें विलायत भेज दूँगा।*

(कुर्सी पर बैठते बैठते लुढक जाते हैं।)

डा० हंसराज : (उठ कर और रसोई-घर की ओर देखते हुए चीख कर) *मै कहता न था। और सब मर गये थे क्या ? ये नौकर किस मर्ज़ की दवा होते हैं। भेज दिया इनको चीज़ें लाने के लिए। अब पड़े भूखों मरो.....*

गुरु : (अपने कमरे को भागता हुआ) *मेरे तो कालेज का समय हो गया है। अब रोटी .....*

[कमरे से गायब हो जाता है। कमला रसोई-घर से मटकती हुई निकलती है।]

कमला : *नौकर को और कोई काम नहीं करना होता क्या ? आप इतने लोग क्या करते रहते हैं ? तिनका तक तो कोई तोड़ता नहीं !*

(दूसरे कमरे में चली जाती है।)

देव : *मै भी चलूँ, मुझे कैंट पहुँचना है।*

(जिधर से आया था उधर से चला जाता है।)

कैलाश : *ओ मुंडू, साबुन तेल रखा है या नहीं ?*

माँ : (रूंआसी सी शक्ल लिये रसोई-घर से झाँकती है) *इन्हें उठाकर चारपाई पर तो लिटा दो। धरती पर पड़े है।*

बसन्तलाल : (उठने का यत्न करते हुए) *कौन साला हमें उठा सकता है... हम...स्वयं उठेगे ..... !*

[उठते हैं, किन्तु लडखडा कर गिर पडते है। चाननराम और डा० हसराज उन्हें उठा कर बिस्तर पर लिटा देते है।]

(पर्दा गिरता है।)

(कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है।)

[बरामदे में निस्तब्धता है। धूप की बडी तिकोन अब एक छोटी सी आयत बन गयी है। रसोई-घर से सुगधि अभी तक उठ रही है, किन्तु, मात्र सब्जी-तरकारी से क्योंकि भूख नहीं मिट सकती, इसलिए शायद डाक्टर साहब स्वयं आटा लेने गये है। गणेश-वाहन श्रीमूषक जी महाराज फिर कहीं से आगये हैं और इस प्रकार इधर उधर विचर रहे हैं, जैसे राजधानी से भागा हुआ अधिपति पुनः अपना राज्य पाने पर। चटाइयाँ खाली हैं, कुर्सियाँ खाली हैं, केवल चारपाई पर पंडित बसन्तलाल पड़े खर्राटे ले रहे हैं। लाटरी का टिकट उनका धरती पर गिर पडा है, किसी ने उसको उठाने का कष्ट नहीं किया और वे सो रहे हैं और उनके खर्राटे बरामदे की निस्तब्धता को और भी निस्तब्ध बना रहे हैं।]

(पर्दा फिर गिरता है।)

(पर्दा फिर उठता है।)

[वही बरामदा और वही सामान। केवल इतना परिवर्तन हुआ है, कि चटाइयों के स्थान पर चरखा बिछा है, जिसके साथ बैठी हुई मा ऊन कात रही है। (गर्मियों में काती जायगी तो सर्दियों में काम आयगी, इसीलिए) साथ में एक दूसरी पीढी है। वह शायद कमला की है, क्योंकि उस पर एक किरोशिए से बुना जाता मेजपोश पडा है। चारपाई वैसे ही बिछी है और उस पर कोई सो भी रहा है। खर्राटों का स्वर चरखे की 'घू घू' में शायद सुनायी नहीं देता। सोने वाला शायद पंडित बसन्तलाल है, किन्तु शायद वे नहीं हैं, क्योंकि पर्दा उठने के पल भर बाद ही वे पूर्ववत् बग़ल में पगडी दबाये, खुले गले की कमीज और फर्श पर घिसटती हुई आधी धोती की कोर से बेपरवाह, मूछों पर ताव देते हुए झूमते-झामते प्रवेश करते हैं। उल्लास उनके चेहरे पर फूटा पडता है और पाव उनके धरती पर ठीक नहीं पडते।

आते ही पगडी को कुर्सी पर फेंक कर खड़े झूमते हैं और नौकर को आवाज़ देते हैं— स्वर उनका थरथरा रहा है, जैसे कि साधारणतया नशे में थरथराने लगता है।]

बसन्तलाल : *मुन्डू, ओ मुन्डू !*

[हरचरन रसोई-घर से भागा हुआ आता है। हाथ सने हुए है। शायद बर्तन मलता हुआ उठकर भाग आया है।]

हरचरन : *जी !*

बसन्तलाल : (दस रुपये का नोट फेंकते है ।) *जा भाग कर बाजार से कैंची की एक डिबिया ले आ।*

[नोट देख कर मा चौकती है, सूत का तार टूट जाता है, और वह यों ही चरखे की हत्थी घुमाये जाती है। नौकर नोट उठा कर जाता है। पडित बसन्तलाल अपनी पत्नी को सम्बोधित करते है — वैसे ही झूमते हुए, हुलास के पखों पर जैसे उडते हुए :—]

—: *मै कहता हूँ हंसू की मा, माग लो आज जो कुछ मुझ से माँगना चाहती हो ! मै तुम्हारी हरेक इच्छा आज पूरी कर दूगा।*

[कुर्सी में धँस जाते हैं। टागे तिपाई पर रख लेते है— मा चरखा कातना छोड देती है और अविश्वास से हँसती है।

पडित बसन्तलाल टागें फिर नीचे करके उसकी ओर मुडते है—]

—: *तुम समझती हो, मै हँसी करता हूँ। मै सत्य कहता हूँ। मुझे तुम मदमत्त मत समझो। माँगो !*

(उठ कर खड़े हो जाते है, झूमते और लडखडाते हैं।)

—: *माँगो मै सब कुछ दूँगा।*

माँ : (विषाद से हँसती है) *मैं क्या माँगूँगी।*

(सूत का तार जोडने का प्रयास करती है।)

बसन्तलाल : *गहना, कपडा, सुख, आराम कुछ भी माँगो, तुमने आयु भर मेरे साथ दुख पाया है, कहो, तुम्हें गहने कपड़ों से लाद दूँ।*

माँ : (स्वर आर्द्र हो जाता है) *मैंने बहुतेरे गहने कपडे पहन लिये* (सजल हँसी से) *अब तो यही अभिलाषा है कि आपके चरणों में संसार छोड़ दूँ ।*

बसन्तलाल : *संसार छोड़ दो पगली !* (हवा को हाथ से चीरते है और इस प्रयास में गिरते गिरते कुर्सी पर धँस जाते है ।) *ससार-सुख के उपभोग का अवसर तो अभी आया है ।* (सहसा आँखें भर कर) *मैंने तुम्हे बडे दुख दिये—मारा पीटा, गहने कपडे से तग रखा* (सिसकने लगते हैं ।) *पैसे पैसे को मोहताज रखा, बनवाकर तो क्या देता उल्टा तुम्हारी चीज़ें तक बेच डालता रहा* (सहसा आँखें पोंछकर जोश से) *किन्तु अब मै सब बातों की कसर निकाल दूँगा । मै अब तुम्हे इतना सुख दूँगा* (और भी जोश से) *इतना सुख, कि तुम्हें अधिक की इच्छा न रहेगी । गहने कपडे, जितने चाहो पहनो ! जिस तीर्थ की चाहो यात्रा करो !! और जितने ब्राह्मणों और ब्राह्मणियों को चाहे खाना खिलाओ !!! —कितनी देर से तुम तीर्थ-यात्रा करने को तरस रही हो, देखो कोई तीर्थ रह न जाय, फिर न कहना कि अमुक स्थान को देखने की अभिलाषा रह गयी ।*

[मा निर्निमेष किन्तु अविश्वासभरी-दृष्टि से चुपचाप उनकी ओर देखे जाती है ।]

— : *हाँ कोई ऐसा तीर्थ नही, कोई ऐसा स्थान नहीं जो मै तुम्हे न दिखा दूँ ! तुम्हें दान-पुण्य का जितना शौक है, वह सब निकाल लो । जितना चाहे दान पुण्य करो !*

(फिर टागे तिपाई पर रख लेते है ।)

माँ : (अविश्वास और व्यंग्य से) *मैंने बहुतेरा दान-पुण्य कर लिया ।*

बसन्तलाल : (नशे में झूमते हुए) *मै कहता हूँ, मैं एक लाख रुपये केवल तुम्हारे नाम लगवाने जा रहा हूँ !*

माँ : (विमूढा सी) *लाख !*

बसन्तलाल : (अपनी रौ में) *एक लाख रुपया इन साले लडकों को दे दूँगा।*

माँ : *लाख !*

बसन्तलाल : (अपनी रौ में) *और एक लाख में से चाननराम, गोबिन्द राम, बनारसीदास . .।*

माँ : *लाख—लाख—लाख आप शायद . ..*

बसन्तलाल : (जोश से उठकर) *तुम्हें विश्वास नहीं होता* (जेब से तार निकालते है।) *तीन लाख की लाटरी मेरे नाम निकली है।*

माँ : (भौचक्की सी) *तीन लाख की !*

(उठ कर खडी हो जाती है।)

— : *आप शायद अधिक*

बसन्तलाल : (कागज को हवा में फहराते हुए) *यह देखो तार। मैंने दीनदयाल से दस हज़ार रुपया लिया है। जब तक लाटरी का रुपया वसूल नहीं होता, तब तक के लिए। पाँच हज़ार मै चाननराम को दे दूँगा, उसकी लड़की का विवाह है। मै उसका आभार नही भूल सकता* (सहसा आखें भर कर) *इन साले लडकों ने जब मेरा साथ छोड़ा तब उसने मेरी कितनी सेवा की* (आँखे पोंछ कर) *पर पूत कपूत होते हैं पिता कुपिता नहीं होते, मैं इन सालों के नाम एक लाख लगा दूँगा, लाख तुम ले लो और शेष लाख से मै जो चाहे करूँ। मैंने तुम्हें कहा था न कि लाटरी इस बार मेरे नाम अवश्य आयेगी।*

माँ : (मन ही मन से भगवान सत्यनारायण को प्रणाम कर के) *मैंने भगवान सत्यनारायण की कथा करायी थी।*

(चर्खे के ऊपर से गुजर कर उनके पास आ जाती है।)

बसन्तलाल : *तुम अब सब नारायणों की कथा कराना।*

[चलते हैं, फिर रुक कर पगडी उठाते हैं, उसी तरह बगल में दे लेते हैं, और मूछों पर ताव देते हुए दरवाजे की ओर बढ़ते हैं।]

माँ : (साथ साथ जाती हुई) किधर चल दिये, कुछ पल तो बैठिए, आप ..

बसन्तलाल : मुझे चाननराम से मिलना है, उसकी लडकी का विवाह है...

माँ : (आर्द्र-कठ से) दयालचन्द का भी आप को ख्याल आया।

बसन्तलाल : दस हज़ार रुपया उसके ढूँढने पर खर्च कर दूँगा। वह मेरा लडका इन सब से अच्छा था—आज्ञाकारी और होनहार!

माँ : सब उसकी बुद्धि की प्रशसा करते थे।

बसन्तलाल : वह पाताल में चला जाय तो भी मै उसे ढूँढ लाऊँगा।

माँ : लेकिन आप हस को तो आ लेने दें।

बसन्तलाल : उस साले को मैं माल पर दुकान खुलवा दूँगा।

माँ : आप की कैंची की डिबिया ....

बसन्तलाल : नौकर को शौक है, उससे कहना पी ले.....

(चले जाते हैं।)

[मा मुडती है, प्रसन्नता से चेहरा दुगना हो गया है। इधर उधर देखती है कि कहीं भगवान की मूर्ति हो तो सिर झुकाये। पर वह तो बरामदा है वहा भगवान की मूर्ति कहा, चित्र भी नहीं। आखिर आकाश की ओर देख कर नतमस्तक हो जाती है, भगवान आकाश में जो बसते हैं न, इसी लिए।]

—: भगवान तेरी लीला अपरम्पार है। तूने जिस प्रकार मेरी सुनी इस प्रकार सब की सुन। मै सब से पहले तेरा प्रसाद बाटूँगी।

(नौकर कैंची की डिबिया लिये प्रवेश करता है।)

नौकर : माँ जी कैंची.....

माँ : डिबिया तू ही रख ले और जा पाँच रुपये के लड्डू चौक से ले आ। ताजे बनवा कर लाना। मैं पाठ पर बैठी

होऊँ तो मुझे न बुलाना ! भगवान को प्रसाद लगाना चाहती हूँ मै !

[नौकर उलटे पाव वापस चला जाता है और मां बायां ओर के, सामने कमरे में प्रवेश करती है।

कुछ क्षण बाद डा० हसराज घबराये हुए प्रवेश करते है और अपनी पत्नी को आवाज देते हैं]

डा० हसराज : *कमला, कमला*

[कोई आवाज नहीं आती

डाक्टर साहब "कमला कमला" आवाजें देते हुए सब कमरों में झाँकते है और फिर शायद पाठ करती हुई मां से सकेत पाकर स्नानगृह के दरवाजे पर आ खड़े होते हैं और किवाड पर टिकटिक करते हुए आवाज देते है ।]

— : *कमला कमला !*

[किवाड खोल कर कमला अन्दर से निकलती है। खुले खुले चमकीले बाल उसके कधों पर बिखरे हैं। चेहरा निखरा हुआ है और श्वेत साडी उसने पहन रखी है। कधों पर बालों के नीचे एक तौलिया है।

पीढ़ी पर रखा हुआ किरोशिया और आधा बुना मेज़-पोश उठा लेती है और किरोशिया चलाने लगती है।]

डा०हंसराज : *तुम्हें हो क्या गया। इतनी आवाज़ें मैने दी.....*

कमला : *मैने नल छोड़ रखा था। केश.. ...*

डा०हसराज : *तुम्हें पता नहीं पिता जी के नाम तीन लाख की लाटरी निकल आयी है।*

(कमला अवाक् खडी रह जाती है।)

डा०हंसराज : *सच, तीन लाख की। तुम्हे याद है न, एक बार तुमने आटा लेने के लिए दस रुपये उन्हें दिये थे। उस दिन, जब चचा चाननराम यहाँ आये हुए थे। उस दिन जी, जब कैलाश-पति भी यहाँ था और वे आटा लाने के बदले लाटरी का टिकट ख़रीद लाये थे।*

कमला : (बुनना छोड़ कर) वे रुपये तो हमारे थे। लाटरी का रुपया तो हमें मिलना चाहिए।

डा० हंसराज : (विवशता से) लेकिन डर्बी-स्वीप वाले तो इस बात को नहीं जानते।

कमला : वे लाख न जानें। किन्तु पिता जी को तो उसका आधा हमें देना चाहिए। यदि मैं रुपये न देती तो वे टिकट कहाँ से खरीदते।

डा० हंसराज . तुम तो मूर्ख हो।

[सिर कुरेदते हुए घूमते है। कमला शायद 'मूर्ख' की उपाधि पाकर ही सतुष्ट हो गयी है। इसलिए वह दीवार के साथ ही लगी खडी चुपचाप मेजपोश बुनती रहती है।]

डा० हंसराज : (सारे बरामदे का एक चक्कर लगाकर, 'तुम क्यों दुबले नगर के आदेशे' के से स्वर में) मैं कहता हूँ, यह चाननराम पिता जी का सब रुपया हड़प करके दम लेगा। 'मुझे निहालदास ने बताया—आते आते कहीं उसकी दुकान पर गप हाँक आये होंगे—पाँच हजार पिता जी उसे दे रहे है। निहालदास कहता था कि वे अभी घर गये है, आये थे पिता जी यहाँ?'

कमला : शायद आये हों, मुझे कुछ आभास तो होता है, परन्तु मै तो स्नान-गृह में थी, और नल मैंने छोड़ रखा था और माँ चर्खा कात रही थीं, कदाचित इस सब के शोर में मुझे सुनायी नहीं दिया। मां से पूछा आपने?

डा० हंसराज : वे पाठ पर बैठी हैं।

[डा० हंसराज चुपचाप, कमर के पीछे हाथ रखे, बरामदे का एक और चक्कर लगाते है फिर रुककर :—]

— तुम मानी नहीं तब, नहीं यदि उन्हें यहाँ से न जाने दिया जाता तो कितना अच्छा होता।

कमला : (तिनक कर) मै नही मानी, मैंने तो कई बार कहा कि

आखिर आप के पिता है, उन्होंने पढ़ाया लिखाया तो आप इतना कमाने के योग्य हुए—किन्तु आपने सदैव मुझे डाँट बता दी। आप स्वयं नही चाहते थे।

डा० हंसराज : मै न चाहता था। जब वह शराब पिये आते थे तो उनकी गालिया किसे अखरती थीं?

कमला : और जब वे कीचड़ से सने हुए जूते लिये, खुले गले, नंगे सिर, झूमते झामते दुकान में आ जाते थे तो कौन तिलमिलाता था?

डा० हंसराज : पर तुम्ही को तो उनका कई कई मेहमानों को लेकर आ जाना और उन सब के लिए खाना पकाने का ताना-शाही आदेश देना अखरता था।

कमला : और आपको ही तो उनका रोगियों के सामने आधा नाम लेकर पुकारना बुरा लगता था।

डा० हंसराज : तुम मेरे साथ अन्याय करती हो।

कमला : आप मेरे साथ अन्याय करते हैं। यही दस रुपये—याद है न आपको—मैंने आटा लाने के लिए दिये थे और आपने दस बातें बनायी थीं।

[मटकती हुई दायें कमरे में जाती है। बगूले की भाँति गुरु प्रवेश करता है।]

गुरु : भाई साहब, सुना आपने, पिता जी के नाम तीन लाख की लाटरी निकली है (मुँह बाये और आँखें फाड़े) तीन लाख की डर्बी की लाटरी! राज का बडा भाई उनसे मिलने के लिये चचा चाननराम के घर गया था।

डा० हंसराज : इंटरव्यू करने के लिए?

गुरु : जी! दो बार तो वे बात ही नही कर सके, गुट पड़े थे, तीसरी बार वह गया तो अपनी अलसायी, मदमाती, रक्तवर्णा, आँखें खोल कर उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और उसके मुँह पर एक जोर से चपत लगा दी और फिर

जेब से एक सो का नोट निकाल कर उसके सामने फेंक दिया कि जा कम्बख्त दो चार दिन मज़े कर, क्या ज़रा ज़रा सी खबरों के लिए मारा मारा फिरता है।

डा० हंसराज : (चौंक कर) सौ रुपया दे दिया (जिस कमरे में कमला गयी है, उधर को देख कर) मैं कहता हूँ, यह तीन लाख रुपया इसी तरह उड़ जायगा (फिर गुरु की ओर मुड कर) गुरु तुम जाओ, तनिक हरिनाथ को बुला लाओ।

[गुरु चलना चाहता है। डा० हसराज उसे फिर आवाज देते है।]

— : और देखो, बिन्द्रा के यहाँ से, देव को टैलीफ़ोन कर देना और यह लो एक रुपया, कैलाशपति को तार दे दो कि जिस प्रकार भी हो सके, वह आज रात यहाँ पहुँच जाय।

[रुपया निकालकर उसकी ओर फेंकते हैं, गुरु उसे उठाकर चला जाता है और डाक्टर साहब फिर सिर कुरेदते हुए घूमने लगते हैं और फिर आप ही आप खदबदाते हैं :]

— : किसी न किसी प्रकार उन्हें यहाँ ले आना चाहिए।

(फिर घूमते हैं, फिर रुककर ·)

— : पर ले कैसे आएँ ?

[कमला, पूर्व-वत् किरोशिये से मेजपोश बुनती हुई, एक कमरे से निकल कर दूसरे कमरे को जाती है, बुना हुआ मेजपोश लटकता हुआ जा रहा है—डाक्टर साहब उसके पास जाते है।]

— : कमला।

कमला : (रुककर और मुड कर) कहिए।

ड० हंसराज : (और भी पास जाकर तनिक मेद भरे तथा अनुनय के स्वर में) देखो जो हुआ सो हुआ, पर बुद्धिमान वही है, जो बिगड़ी हुई बात बना ले।

कमला : (नीची निगाह किये किरोशिया चलाती हुई) *इसमें क्या सन्हदे है, बिगड़ी हुई बात बनानी ही चाहिए ।*

(चलती है ।)

डा० हसराज : (साथ साथ चलते हुए) *मै चाहता हूँ कि पिता जी को यहाँ ले आऊँ ।*

कमला : *तो ले आइए ।*

डा० हसराज : *लेकिन ले आने से काम न चलेगा, उन्हें यहाँ रखना होगा ।*

कमला : *तो रखिए !*

डा० हसराज : *रखने की बात नहीं, उनका मन बहलाना होगा !*

कमला : *तो बहलाइए !*

(गुरु के कमरे में दाखिल हो जाती है ।)

डा० हंसराज : (बाहर खड़े खड़े) *कमला !*

[कमला मुड़कर चौखट में खड़ी हो जाती है—चट्टान की भाँति !—दोनों एक निमिष के लिए एक दूसरे की की ओर देखते हैं ।]

डा० हंसराज : (स्वर को तनिक विवश, तनिक विनम्र बनाकर) *देखो मेरी बात का गुस्सा न किया करो ! मेरा दिमाग बड़ा परेशान रहता है । खर्च दिन दिन बढ़ता जा रहा है और आय उतनी है नहीं और सरकार के बढ़ते हुए करों के कारण दुकान और मकान के स्वामी किराया बढ़ाने की सोच रहे हैं और फिर यह कम्बख्त लाहौर—नित्य कोई न कोई अतिथि आया रहता है और पोजीशन रखने के लिए महँगे भाव चीज़ें खरीदनी पड़ती हैं ।*

[कुछ क्षण के लिए, यह देखने के हेतु कि उनकी इस विवशता का प्रभाव उनकी पत्नी पर पड रहा है या नहीं, उसके चेहरे की ओर देखते हैं फिर :]

— : *कैसी विडम्बना है यह कि जिनको आवश्यकता है, उन्हें*

लोहू पानी एक करने पर भी पैसा नहीं मिलता और जिन्हे ज़रूरत नहीं, उनके पास आप से आप चला आता है।

(फिर पत्नी के मुख की ओर देखते है ।)

— : उनको व्यर्थ उड़ाने के लिए तीन लाख मिल जायँ और हमें उचित खर्च के लिए तीन सौ भी न मिलें !

[विवशता लाचारी और निराशा से सिर झुका लेते है । चट्टान पिघलकर अपना स्थान छोड देती है ।]

कमला : (बाहर आकर) आप यों ही जी छोटा करते हैं। दूसरे के नर्म-गर्म बिस्तरों को देखकर कोई अपनी दरी दुलाई तो नहीं उठा देता।

डा० हंसराज : (लगभग गर्ज कर) दूसरों के—मैं अपने पिता की बात कर रहा हूँ। उनके धन पर क्या हमारा कोई अधिकार नहीं? उनके सुख दुख में क्या हमारा कोई भाग नहीं? और फिर मैं कहता हूँ कि अपने हक और अपने हिस्से की बात छोड़ो, मैं तो उनके लाभ की बात सोच रहा हूँ। यदि इस समय उन्हें न बचाया गया तो वे तबाह हो जायेंगे। परमात्मा ने यदि उन्हें एक अवसर दिया तो उन्हें उसका पूरा लाभ उठाना चाहिए। उसका दुरुपयोग उन्हें न करना चाहिए। और वे जिस रफ़्तार से रुपया उड़ा रहे हैं उस तरह तो तीन लाख, तीन वर्ष तो क्या, तीन महीने नहीं रहेगा। तुमने सुना नहीं, उस राज के भाई को उन्होंने एक सौ रुपया केवल एक चपत खाने के बदले दे दिया।

(देव चुपचाप प्रवेश करता है ।)

देव : केवल एक चपत, परमात्मा की सौगन्ध, सौ रुपये के लिए तो आदमी सौ जूते खा सकता है।

डा० हंसराज : और भला नहीं क्या ?

(कमला हँसती है ।)

देव : (उसी सर्दियों के सूर्य की सी मुस्कान के साथ) हँसी की बात

नहीं भाभी, तुम नहीं जानतीं, डिलिवरी ब्रॉच में कितना काम होता है। नये विधान के अनुसार दफ़्तर तो दूर, दुकानों के नौकरों तक को इतवार की छुट्टी होती है, किन्तु मुझे कई रविवारों को प्रातः पाँच बजे से साँझ सात बजे तक ड्यूटी देनी होती है। साल के बारह महीने, महीने के तीस इकतीस दिन और एक दिन के आठ घटे—कहने का मतलब यह कि वर्ष भर में लगभग दो हज़ार नौ सौ बीस घटे अनथक काम करने के बाद मिलता क्या है? चालीस रुपया मासिक के हिसाब से मात्र ४२० रुपया—फिर यदि १०० जूते खाने के बदले सौ रुपया मिल जाये तो क्या बुरा है।*

डा० हंसराज : *लेकिन मैं पूछता हूँ—हरिनाथ क्यों नहीं आया। उसे तो तुम से पहले आ जाना चाहिए था। मैंने गुरु से कहा था कि वह उसे भेजकर तुम्हें टैलीफ़ोन करे। और तुम ही इतनी जल्दी कैसे आ गये, क्या लारी पर आये थे?*

देव : *आया तो मैं लारी पर ही हूँ, किन्तु टैलीफ़ोन मुझे नहीं मिला।*

डा० हंसराज : *तो तुम्हें लाटरी का कैसे पता चला।*

देव : *शायद पिता जी उसमें से चचा चाननराम को पाँच हज़ार रुपया देने वाले हैं। ईर्षा-वश उनके भाई ने मुझे टैलीफ़ोन किया कि यदि तुम लोगों ने कुछ न किया तो सब समाप्त हो जायगा।*

डा० हंसराज : *इसमें क्या सदेह है, एक बोतल पिला कर कोई पिता जी से तीन लोक का साम्राज्य लिखवा सकता है और फिर चची.....*

देव . *एक ही विष की गाँठ है। ऊपर से जितनी भोली है, अन्दर से उतनी ही खोटी! आकृति उनकी जितनी सुन्दर है,*

---

* डाकखाने का एक विभाग जिसमें बाहर से आये हुए पत्र बाँटने के लिये डाकियों को दिये जाते हैं।

हृदय उनका उतना ही कुरूप है। मीठी मीठी बातों से मोह लेना वे खूब जानती है और फिर पिता जी, उनकी दुर्बलता तुम जानते ही हो, मीठी बातें करके, उन्हें चाहे कोई लूट ले, उनके कपडे तक उतार ले!

डा०हंसराज : छै महीने घर रखने के बदले पाँच हज़ार रुपया हथिया लिया, और लूटना किसे कहते है?

[दोनों कमरे में घूमने लगते है। एक कुर्सी से रसोई-घर तक और दूसरा कुर्सी से कमरे तक। फिर दोनों आमने सामने आकर खड़े हो जाते है।]

डा०हंसराज : (उसी कटुता से) देखो न, तुम उस डाकखाने के अँधेरे कमरे में, दिन के समय भी बिजली की रोशनी में चिट्ठियों के साथ माथा फोड़ते हो। यदि जीवन में तुम्हें कुछ स्टार्ट मिल जाये तो तुम क्या कुछ न कर लो। अपने ही विभाग में तुम ऊँचे से ऊँचे पद पर आसीन हो सकते हो। यदि पिता जी तुम्हें दस हजार.....

देव : उन्हें पहले अपने नये पुत्रों को तो स्टार्ट दे लेने दें। बनारसीदास को वे अपना सातवाँ पुत्र कहते है और अब तो चचा चाननराम भी पुत्र बन जाएँगे और दीनदयाल भी और जाने कौन कौन पुत्र बन जाय...और मै तो मात्र चौथा हूँ... ...

[हरिनाथ प्रवेश करता है—बाल बिखरे, डाढ़ी बढ़ी, धोती और कमीज कदरे मैली]

डा०हंसराज : (उसी कटुता से) अब हरिनाथ ही को ले लो। जीवन यापन के लिए पत्रिका और प्रेस का रोग लगा बैठा है और सूरत तो देखो क्या बनायी है? क्या कम्पाज़िटरों के साथ माथापच्ची करना इसके बस की बात है? प्रूफ पढना और अनुवाद करना क्या इसका काम है! यह ठहरा कवि-हृदय, इसे चाहिए था कि यह भ्रमण करता, श्रीनगर, पहलगाँव, मसूरी, नैनीताल जैसे नगरों की सैर करता।

समुद्र-तट देखता और फिर शान्ति निकेतन ऐसे स्थान में जम जाता और अमर काव्यों की रचना करता।

हरिनाथ : (म्लान हँसी से) अरे भाई, ऐसे भाग्य कहाँ ?

डा०हंसराज : इस मे भाग्य की कौन सी बात है ? तुम्हे शायद मालूम नहीं, पिता जी को तीन लाख की लाटरी आयी है।

हरिनाथ : (आँखें फट जाती है और मुँह खुल जाता है) तीन लाख की ?

डा०हंसराज : तीन लाख की। यही तो मैं कहता हूँ (लगभग भाषण देते हुए) यदि आज वह तीन लाख रुपया वृथा जाने के बदले किसी अर्थ लग जाये तो क्या नहीं हो सकता ? वह कैलाशपति क्या टिकेट-कलक्टर बनने योग्य है, उसे तो पुलिस इंस्पेक्टर होना चाहिए था। कुछ रुपये खर्च करके उसे अब भी सीधा सब इसपेक्टर भरती करवाया जा सकता है। गुरु को विलायत भेजा जा सकता है और यदि वह विलायत चला जाये तो अपनी प्रखर-बुद्धि के साथ क्या कुछ नहीं कर सकता, कौन उसे आई० सी० एस० बनने से रोक सकता है !

देव : विलायत भेजने से लाभ ! वहाँ तो दिन रात बमबारी होती रहती है !

डा०हंसराज : (खीज कर) विलायत न सही, हिन्दुस्तान में तो बमबारी नहीं होती।

देव : पर सरकार ये पद प्रतियोगिताओं से न भरेगी, स्वयं नामज़दगियाँ करेगी।

डा०हंसराज : तो और भी सुगम है। नामज़दगियाँ पैसे वालो की होती हैं। मैं कहता हूँ, यदि घर में एक भी आई० सी० एस० हो जाये तो सारे का सारा वंश तर जाता है।

हरिनाथ : (जो काश्मीर तथा नैनीताल की सैर कर रहा है।) इसमें क्या संदेह है ?

डा०हंसराज : और मै क्या माल पर दुकान नहीं ले जा सकता। ये

डाक्टर माथुर, कपूर, भल्ला क्या मुझ से योग्य है— पैसा चाहिये पैसा, माल पर उन जैसा सैनीटोरियम क्या मै नही खोल सकता !

कमला : (जो इस समय तक चुपचाप मेजपोश बुन रही थी) मै कहती हूँ, मैं चली जाऊँगी, उन्हें यहाँ ले भी आऊँगी। शेष आपका काम है कि उन्हें फिर न भटकने दें।

डा० हंसराज : (उल्लास से) दिस इज़ लाइक ए गुड गर्ल।*

हरिनाथ : तुम्हारे बिना यह काम किसी से न होगा, भाभी।

[माँ पाठ करने के बाद माला हाथ में लिये हुए ही बाहर निकलती है।]

माँ : हरचरण आया नहीं अभी।

(हरचरण लड्डुओं की टोकरी लिये प्रवेश करता है।)

हरचरण : मैं आ गया माँ जी।

गुरु : यह लड्डू कैसे हैं ?

माँ : भगवान का प्रसाद बाँटूँगी।

हंसराज : तो लाओ इसी बात पर मुँह तो मीठा किया जाय।

माँ : (दरवाजे की ओर जाती हुई) न, न, पहले भगवान को भोग तो लगा लिया जाय। (नौकर से) आ रे हरचरण मेरे साथ मन्दिर तक, भगवान.....

हरिनाथ : (कवि) हमसे बड़ा भगवान कहाँ है।

(सब हँसते हैं।)

(पर्दा गिरता है)

---

*This is like a good girl. यह बात है अच्छी बीबी की

(पर्दा कुछ क्षण बाद फिर उठता है।)

[दृश्य वही है। वही बरामदा और उसमें का वही सामान। चारपाई वैसे ही बिछी है और उस पर चादर ताने वैसे ही कोई सोया हुआ है। खुर्राटे वह नहीं ले रहा और नींद में बेहोश पड़ा दिखायी देता है।

कुर्सियों में भी कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। वैसे ही तिपाई के दोनों ओर पड़ी हैं। हाँ दो और कुर्सियाँ सामने की ओर को रख दी गयी हैं, रसोई-घर से ज़रा-ज़रा सा धुआँ भी निकल रहा है, यद्यपि उसमें से अब सुगंधि नहीं आती, क्योंकि अन्दर चूल्हे में अनवरत सुलगने वाले उपलों के धुएँ ने, पंडित बसन्तलाल के निरन्तर गुड़गुड़ाने वाले हुक्के के धुएँ से मिल कर, उसे परास्त कर दिया है।

पर्दा उठने पर, हम दायीं ओर की कुर्सी पर पंडित बसन्तलाल को नशे में मद-मत्त हाथ में खाली हुक्के की नै लिये, टाँग पर टाँग धरे, बैठे देखते हैं। चिलम शायद भरे जाने के लिए चली गयी है। उनके सामने की कुर्सी पर डा० हसराज बैठे है और आकृति उनकी उस कुत्ते की सी बनी हुई है, जो स्वामी को खाना खाते देख

कर, दुम हिलाता, विनम्र, खुशामदी, लालसा भरी दृष्टि से ताकता हुआ, घुटने टेक कर बैठ जाता है कि तनिक स्वामी का ध्यान हो तो दुम हिलाये। उसमें और इनमें अन्तर मात्र इतना ही है कि इनके दुम नहीं, जिसे ये हिला सकें।

दो बार खाली हुक्के को गुडगुडा कर पंडित बसन्तलाल चीखते हैं :—]

बसन्तलाल— : *मर गया वहीं चिलम के साथ।*

[स्वर की तीव्रता के बावजूद उसमें वह थथलाहट है, जो नशे के आधिक्य की सूचक है।*

रसोईघर से कैलाश की आवाज़ आती है :—]

कैलाश— : *आया पिता जी ?*

[और कुछ क्षण बाद कैलाशपति रसोईघर से चिलम हाथ में लिये, उसमें फूकें मारता हुआ आता है।

आश्चर्य, कि उसकी हिंस्र-दृष्टि का कहीं ढूढे से भी पता नहीं चलता और बर्बर सा न दिखायी देकर वह निरीह सा दिखायी देता है, सिर पर उसके लम्बे लम्बे बाल नहीं और भवों पर वह तनाव नहीं। सिर पर मशीन फिरी है और लगता है जैसे भवों पर भी मशीन फिर गयी है, क्योंकि मस्तक पर एक भी तो सिलवट नहीं। चुपचाप बड़े विनम्र भाव से चिलम लाकर हुक्के पर रख देता है।

प० बसन्तलाल एक कश लगाते हैं और गुर्राते हैं—]

— : *ईडियट !* तुझे चिलम भरने की भी तमीज नहीं, बी० ए० पास हो गया है।*

[कैलाश आँखें उठाता है, जो शायद फरियाद कर

---

* इस सारे दृश्य में उनकी यह थथलाहट जारी रहती है, और यद्यपि ज्यों ज्यों वे अधिक पीते हैं, अधिक मुखर होते जाते हैं, किन्तु थथलाहट भी उनकी बढती जाती है।

* *Idiot* (मूर्ख !)

रही है कि पिता जी, मै बी० ए० में चिलम भरना नहीं सीखता रहा। तभी डाक्टर साहब उचक कर उठते हैं और अपने पिता के हाथ से चिलम ले लेते है ।]

डा० हंसराज : *सोलह आने मूर्ख हो। भला कहीं इस तरह चिलम भरी जाती है। देखो उपले की आग को इस तरह नही रखा जाता। उसके छोटे छोटे टुकडे करके रखे जाते हैं। तुमने तमाकू भी ठीक ढग से नहीं भरा होगा* (पिता से) *मै जाता हूँ, अभी और चिलम भर के लाता हूँ।*

[चिलम लेकर रसोईघर में चले जाते हैं। कैलाशपति कुर्सी पर बैठने लगता है।]

बसन्तलाल : *तुम जरा मेरी टाँगे दबाओ।*

[टाँगे तिपाई पर रख लेते है और पीछे को लेट जाते हैं। कैलाशपति मौन रूप से पिता की टागें दबाने लगता है।

देव प्रवेश करता है—सिर बिल्कुल घुटा हुआ है और चोटी खडी है, कैलाशपति उसकी ओर देखता है और हँसी को बरबस रोकता है।]

बसन्तलाल : *वाह ! देखो, अब कितने अच्छे लगते हो ! सदैव सिर घुटा कर रखा करो ! दिमाग़ ताज़ा रहता है, बुद्धि प्रखर होती है और फिर नहाने धोने में आराम रहता है* (तनिक जोश से) *और फिर यह पुरुषत्व की निशानी है। पुरुषों को पुरुष दिखायी देना चाहिए—खुल कर हँसना चाहिए, कड़क कर बोलना चाहिए और शेरों की भाँति गर्जना चाहिए !* (हँसते हैं) *अन्य देशों में तो स्त्रियाँ पुरुष बनती जा रही हैं और यहाँ पुरुष स्त्रियाँ बनने में गर्व अनुभव कर रहे है। जानते हो चोटी का क्या महत्व है ?*

[दोनों मौन रहते हैं, केवल उनकी प्रश्नसूचक-दृष्टि अपने पिता के चेहरे पर जम जाती है।]

बसन्तलाल : *चोटी हिन्दुत्व की निशानी है, हिन्दुओ का अपना जातीय चिन्ह है* (खाली हुक्के को गुडगुडाते है ।) *फिर मनुस्मृति में यह लिखा है कि चोटी बिजली के वेग को रोकती है। यदि कहीं मनुष्य पर बिजली गिरे, तो चोटी के मार्ग से शरीर में होती हुई धरती में प्रवेश कर जाती है।*

देव : *शायद यही कारण है कि प्राचीन समय मे ब्रह्मचारी नंगे सिर रहते थे और चोटी को गाँठ देकर रखते थे कि वह खड़ी रहे।*

कैलाशपति : *बिलकुल बिजली के कंडक्टरो की भाँति, जो ऊँची ऊँची इमारतों पर लगा दिये जाते है—जी वही लोहे के छोटे छोटे तीर अथवा त्रिशूल से— ताकि यदि बिजली गिरे तो इमारत सुरक्षित रहे।*

देव : (जिसे अपनी सूझ तथा स्मृति पर कम गर्व नहीं) *और फिर दादा जी कहा करते थे कि प्राचीन काल के ऋषि मुनि इसी चोटी से रेडियो का काम लेते थे और बैठे बिठाये समस्त संसार की खबरें सुन लेते थे। संजय ने हस्तिनापुर में बैठे बैठे महाराज धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र के युद्ध की खबर सुनायी, वह इस चोटी के कारण ही तो थी।*

[अपनी इस सूझ तथा स्मृति की प्रशंसा पाने के विचार से अपने पिता की ओर देखता है, जो केवल मौन रूप से एक दो बार हुक्का गुडगुडा कर दाद देते हैं। डा० हंसराज चिलम लिये रसोई से निकलते हैं।]

डा० हंसराज : (कैलाशपति की ओर देख कर) *देखो अब चिलम भर कर लाया हूँ—पहले तमाखू को भली-भाँति मल कर उसकी टिकिया बनायी, फिर उसे ककड पर रख कर, उस पर गुड़ के चूरे की हल्की सी तह जमायी, उस पर फिर तमाखू बखेरा, अंगूठे से उसे धीरे धीरे जमाया; नीचे के कंकड़ को तनिक हिला दिया, ताकि जम न जाय फिर उस पर उपलों की आग रखी—घंटे भर से पहले चिलम बुझ जाय तो नाम नहीं।*

[प्रशंसा की याचक निगाहों से अपने पिता की ओर देखते हुए चिलम हुक्के पर रख देते है।

प० बसन्तलाल हुक्का गुडगुडाते है, डा० हंसराज उनके सामने की कुर्सी पर बैठ जाते हैं, और यद्यपि कैलाशपति तिपाई पर टिकी हुई उनकी टाँगे दबा रहा है, वे पाँव दबाने लगते है।

कुछ क्षण तक हुक्के की गुडगुड का शब्द बरामदे की निस्तब्धता को भग करता रहता है और धुएँ के कश छत की ओर जाते हुए, रसोई-घर से उठने वाले धुएँ से मिलते हुए, आकाश की ओर जाते है।

डा० हंसराज चुपचाप से खड़े देव को सकेत करते हैं कि वह पीने का सामान लाये और स्वय अपने पिता के पाँव तनिक और निष्ठा तथा श्रद्धा से दबाते हुए मतलब की बात आरम्भ करते है।]

डा० हंसराज: *पं० रघुनाथ कल फिर आया था।*

बसन्तलाल : (निपुणता से भरी हुई चिलम के नशे से ऊँघती हुई आवाज में) *कौन रघुनाथ ?*

डा० हंसराज . *जी वही रायसाहब चम्पाराम का पुरोहित। देव तथा कैलाश के लिए पूछने आया था, दो बार आगे भी आ चुका है।*

बसन्तलाल : (तन्द्रिल पलकें उठा कर) *कौन चम्पाराम ?*

डा० हंसराज : *जी वही जो द्वाबा ही का रहने वाला है—वही जी, जिसके पास आप एक बार देव की सिफ़ारिश लेकर गये थे, और जिसने सीधे मुँह बात भी न की थी।*

बसन्तलाल : (सहसा उठ कर) *वह चम्पाराम कम्बख्त.....उसको बिलकुल 'न' कर दो !*

(देव मदिरा की बोतल और शीशे का गिलास लाता है।)

डा० हंसराज : (गिलास में मदिरा डालकर उनकी ओर बढ़ा कर, बोतल फिर देव को देते हुए) *यह 'न' करने का समय नहीं पिता जी।*

इस समय तो बल्कि 'हाँ' करनी चाहिए। हमारे उस अपमान का, इससे बढकर और क्या बदला होगा कि वह अपनी लड़कियों की डोलियाँ हमें दे।

[पंडित जी गिलास कठ में उँडेल कर फिर दे देते हैं, डाक्टर साहब बोतल लेकर उसमें से तनिक और उँडेल देते है ।]

डा० हंसराज : (बात को जारी रखते हुए) *और फिर चम्पाराम प्रभाव और समर्थ वाला आदमी है, कैलाशपति को वह सीधा ही सबइंस्पेक्टर भरती करा सकता है, देव का उज्ज्वल भविष्य और उन्नति भी इस रिश्ते से सुनिश्चित हो सकती है और फिर इस आदमी से सम्बन्ध करके और बीसों काम निकल सकते है—गुरु को प्रतियोगिता में बैठना है, और उसमें भी सिफारिश कम काम नहीं करती।*

बसन्तलाल : *तो हाँ कर दो !*

[फिर टाँगें तिपाई पर रख लेते है और पीछे को लेट जाते हैं ।]

डा० हंसराज : (उनके पाँवों को दबाते हुए) *किन्तु 'हाँ' किस प्रकार कर दें। इतने बडे आदमी की लड़कियाँ घर में योंही तो नहीं लायी जा सकतीं। उनके लिए सौ सौ सामान चाहिएँ। मैंने आप से कहा था कि आप बीस बीस हजार रुपया देव तथा कैलाश के नाम लगा दें। फिर जब तक हम अपनी कोठी निर्मित नहीं कर लेते, बाहर एक कोठी लेकर रहें। फिर तो मै 'हाँ' करूँ भी। नहीं तो योंही 'हाँ' करके अपना अपमान कैसे कराऊँ !* (गिलास उठा कर उनको देते हुए) *और फिर अभी तो पण्डित ही देख कर पूछ गया है, जब स्वय चम्पाराम आया और उसे ज्ञात हुआ कि लड़कों के पल्ले तो पैसा भी नहीं तो.....*

बसन्तलाल : (सहसा उठकर और टाँगे नीचे करके) *देव.....*

देव : *जी !*

बसन्तलाल : *जाओ मेरी चैक बुक उठा लाओ।*

(देव बोतल तथा गिलास कैलाशपति को देकर भाग जाता है।)

— : *चम्पाराम को भी पता चले कि बसन्तलाल कोई ऐसा वैसा आदमी नहीं है।*

डा० हंसराज : (रद्दा जमाते हुए) *चाटुकारी से प्राप्त किये हुए धन का उसे गर्व है। भाइयों का गला काट कर वह आज धनाढ्य ..*

बसन्तलाल : *तो हटाओ, उस साले की लड़कियो से हम अपने पुत्रों का विवाह न करेंगे।*

(फिर पीछे को लेट जाते है और हुक्का गुडगुडाते है।)

डा० हंसराज : (चौक कर पुनः पाँवों को दबाते हुए) *विष के मारने को विष ही महाबली है, पिता जी! धनी का दर्प धन ही से चूर हो सकता है।*

[देव चैक बुक ले आता है। डा० हंसराज हाथ बढा देते हैं।]

— : *लाओ, इधर लाओ!*

[देव चैक बुक डाक्टर साहब को देकर फिर बोतल तथा गिलास थाम लेता है और कैलाश फिर अपने कर्तव्य में रत हो जाता है*]

डा० हसराज : (फाउंटेनपैन निकाल कर चैक बुक खोलते हुए) *तो बीस हज़ार कैलाश के नाम लिख दूँ!*

---

*यह दृश्य जब तक रहता है, पुत्र अपना कर्तव्य भली-भाँति निभाते हैं। डा० हसराज बहुत देर तक अपने पिता को नशे के बिना नही रहने देते, कैलाशपति एक बार जो टाँगे दबाने लगा है, तो वही बैठा है, जब वे टाँगे तिपाई पर रख देते हैं, वह उन्हे दबाना शुरू कर देता है, देव जो एक बार बोतल तथा गिलास लाता है तो उन्हे लिये खडा रहता है। जब डा० साहब बोतल उससे लेकर गिलास में उँडेलते हैं तो वह फिर बोतल थाम लेता है, पण्डित जी जब गिलास खाली कर लेते है तो वह उसे थाम लेता है। दूसरों को भी जब कोई काम नहीं होता तो वे अपने पिता के कधे अथवा बाजू आदि दबाने लगते हैं।

(लिखते है ।)

— : *और देव के नाम ? देव तो बडा है। उसे दस हज़ार अधिक मिलना चाहिए !*

बसन्तलाल : (आँखें बन्द किये पूर्व-वत हुक्का गुडगुड़ाते हुए) *हाँ.. हाँ उसके नाम तीस हज़ार लिख दो।*

[डा० हसराज लिखते है ।
सिर घुटाए, जाँघिए लगाये, तेल की मालिश से शरीर चमकाये कवि हरेन्द्र और भावी आई० सी० एस० गुरु प्रवेश करते है ।
पडित बसन्तलाल फिर उठकर बैठ जाते है]

— *कितने डड पेल कर आये ?*

गुरु : *मैने जी पचास डंड पेले और पचास बैठकें निकालीं।*

बसन्तलाल : *और तुमने हरि ?*

हरि : *मै पच्चीस से अधिक नही निकाल सका।*

बसन्तलाल : (हुक्के का कश लगाकर) *बस रोज़ दो बढ़ाओ। धीरे धीरे तुम देखोगे कि तुम्हें कुछ भी कठिनाई नहीं लगती। इधर आओ !*

[दोनों झिझकते हुए अपने पिता के समीप जाते हैं। पं० बसन्तलाल गुरु की गर्दन पर अपनी कलाई से एक घौंल जमाते हैं—इतने ज़ोर से कि गुरु बडी मुश्किल से सम्हलता है]

— : *हाँ अब तुम बलवान हो रहे हो। लाओ तनिक पंजा।*

[अनिच्छापूर्वक गुरु पजा देता है। पं० बसन्तलाल उससे पजा लडाते हैं।]

—: *मरोड़ो !*

[गुरु ज़ोर लगाता है, पर पजा मरोड नहीं पाता। प० बसन्तलाल छोड देते हैं।]

—: *पजा लड़ाने का अभ्यास किया करो। इससे जहाँ हाथ की*

अँगुलियाँ मज़बूत होती हैं, वहाँ कलाई भी मजबूत होती है। जब मै पढता था तो बडे बडो से पजा ले लेता था। और फिर कलाई किसी की पकड लेता था तो उसे छुडाना दुष्कर हो जाता था (हरि से)*इधर आओ, देखूँ तुझ में कुछ बल आया है या नहीं ?*

हरि : (गुरु की गर्दन पर धौल पडते देख कर ही जिस का रंग पीला हो गया है।) *जी अभी क्या आया होगा, अभी तो मै पच्चीस डड ही मुश्किल से निकाल सका हूँ।*

बसन्तलाल : *नहीं, इधर आओ !*

[झिझकता झिझकता हरिनाथ पिता के पास आता है, प० बसन्तलाल उसकी कलाई पकडते हैं।]

—: *छुड़ाओ, ज़ोर लगाओ !*

[बेचारा हरिनाथ भरसक ज़ोर लगाता है पर छुडा नहीं पाता। तब प० बसन्तलाल झटका देकर उसकी कलाई छोड़े देते है।]

—: *तुझ में क्या बल आयगा साले। सारा दिन कविताएँ लिखता रहता है। कविताओ से क्या होगा और फिर उनसे, जो तू लिखता है। बलवान बन, बलवान ! डंड पेल, कबड्डी खेल, दौड़ लगा, कुश्ती लड ! यदि कल तेरी पत्नी को कोई उठाने आ जाय तो अपने इस तिनके से कोमल शरीर को लेकर तू क्या करेगा, जिस में न बल है, न साहस। कविता सुना देने मात्र से तो अत्याचारी पीछे न हटेगा* (हुक्का गुडगुडा कर और खाँस कर) *'संसार में सदैव लाठी वाले की भैस होती आयी है और लाठी उसके हाथ में होती है, जिसकी भुजाओं में बल हो और सीने में साहस !'* (फिर कश लगाते, खाँसते और खँखारते हैं।) *प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम किया करो और "सौची पक्की" खेला करो ताकि सीना मज़बूत हो।*

डा० हंसराज : *यह 'सौची पक्की' क्या बला होती है ?*

[प० बसन्तलाल लडखडाते हुए उठते हैं और गुरु के सामने आ खड़े होते है और अपना बायाँ पाँव आगे बढाते है।]

—: *तुम भी अपना बायाँ पाँव आगे बढ़ाओ।*

(गुरु अपना पाँव आगे बढाता है।)

—: *अब अपनी दोनों हथेलियाँ मेरे सीने पर मारो।*

[गुरु झिझकता हुआ अपने दोनों हाथ अपने पिता के वक्ष पर मारता है।]

—: *अब पीछे हटो, मै मारता हूँ। अपने सीने पर मेरे हाथ लो!*

[पीछे हटकर अपने दोनों हाथ गुरु के सीने पर मारते हैं—इस जोर से कि गरीब पीछे गिरता गिरता बचता है। दीनदयाल प्रवेश करता है और गुरु, जिसका सीना केवल एक बार की 'सौंची पक्की' से दर्द करने लगा है, पीछे हट जाता है।

दीन दयाल प० बसन्तलाल ही की आयु का व्यक्ति हैं। बड़े अच्छे सूट में आवृत्त है, आकृति उसकी ऐसी है कि उसे देखकर उसके आन्तरिक भावों को जान लेना बडा कठिन है—यद्यपि आयु ने चेहरे पर अपनी रेखाएँ बनानी आरम्भ कर दी हैं, तो भी वह यथेष्ट भरा हुआ है। ओठों की सहज मुस्कान और स्वभाव की, अभ्यास से पैदा की हुई, विनम्रता ने उस पर एक खौल सा चढ़ा रखा है—केवल उसकी आँखों में कुछ ऐसी अमानुषिक चमक है, जो उसके इस खौल का भेद खोल देती है, पर उस चमक को पहली नजर में देख लेना साधारण व्यक्ति के बस की बात नहीं।]

दीनदयाल : *वाह खूब अखाड़ा बना रखा है। तुम भी...बसन्तलाल...* (हँसता है।) *तुम्हें सभ्यता कभी न छुएगी।*

[बसन्तलाल गुरु को उसकी निर्बलता पर कुछ कहने ही जा रहे थे कि दीनदयाल को देखकर वापस आकर कुर्सी में धँस जाते हैं। गुरु गिरता गिरता सम्हल कर 'नमस्कार' करता है। देव के हाथ खाली नहीं, इस लिए वह बोतल और गिलास समेत हाथों को मस्तक से लगाकर अभिवादन करता है। हरिनाथ अपने आप को इस वेश में देख कर घबरा जाता है और 'नमस्कार' करना भूल जाता है, केवल डाक्टर साहब सहज भाव से उठकर 'नमस्कार' करके कुर्सी पेश करते हैं।]

बसन्तलाल : (कुर्सी में धँसते हुए) *सभ्यता.....*

[देव से बोतल और गिलास लेना चाहते हैं। डा० हसराज व्यस्त होते हुए स्वय बोतल और गिलास ले, पैग बनाकर उन्हें देते हैं।]

—: (एक ही बार उसे कठ में उँडेल कर, 'दीनदयाल का कंधा पकड कर झकझोरते हुए) *आजकल की सभ्यता में है क्या ! उसमें साहस कहाँ है ! दयानतदारी कहाँ है। सत्य कहाँ है ? सहिष्णुता कहाँ है ! हमदर्दी, तरस और वफा कहाँ है ?* (हुक्का गुडगुड़ाते हैं।) *यह सभ्यता दिखावे की सभ्यता है; छल, कपट और फरेब की सभ्यता है—यह ब्राह्मण की सभ्यता नहीं, क्षत्रिय की सभ्यता नहीं, यह वैश्य की सभ्यता है।* (खँखारते और झूमते हैं।) *रुपये के बल पर पुत्र को पिता के विरुद्ध खरीद लो; भाई को भाई के विरुद्ध खरीद लो; नौकर को स्वामी के विरुद्ध खरीद लो, मित्र को मित्र के विरुद्ध खरीद लो; और देश सेवक को राष्ट्र के विरुद्ध खरीद लो* (दीनदयाल को बाजू से पकड कर झकझोरते हुए) *तुम किस सभ्यता का जिक्र करते हो, आज पैसे के बल पर मै सारी दुनिया और उसकी सभ्यता को खरीद सकता हूँ।* (टाँगें तिपाई पर रख कर पीछे को लेट जाते है।) *आज जिस पागल को कोई पूछता नहीं; जिसके मस्तिष्क में सोलह आने भुस भरा हुआ है; कोई*

बड़ा आदमी तो क्या, क्लर्क तक जिस मूर्ख से बात करना पसन्द नहीं करता, उसके पास यदि आज कहीं से धन आ जाय तो कल बड़े से बड़ा आदमी उसे अपना दामाद बना सकता है। सभ्यता ...(हँसते हैं और नशे में कुर्सी पर ही झूलते है।) मै पूछता हूँ, इसमें हड्डी कहाँ है, स्थायित्व कहाँ है, इस लचलचाती, खोखली सभ्यता की दुहाई देकर तुम मेरा उपहास उड़ाना चाहते हो.. ...साले!

(हुक्का गुड़गुड़ाते है।)

दीनदयाल : (चतुर) *और तुम्हें इस नंग धड़ंग सभ्यता का मान है। है न?*

बसन्तलाल : (दीनदयाल के जाल में फँस कर जोश के साथ) *इसमें अपनापन तो है, निजत्व तो है,* (फिर हुक्के का कश खींचते है।) *यह चिलम साली बुझ गयी।* (चिलम को उतार कर देखते है।) *इन सालों को कभी चिलम तक न भरनी आयगी।*

[कैलाशपति वहीं बैठा बैठा उस व्यंग्यभरी मुस्कान से डाक्टर साहब की ओर देखता है, जो कदाचित यह कह रही है कि यदि मूर्खता का यही माप है तो इस दृष्टि से हम सभी सोलह आने मूर्ख है।

लेकिन डा० हंसराज उसकी ओर नहीं देखते, चिलम अपने पिता से लेकर वे हरिनाथ की ओर बढ़ा देते हैं।]

डा० हंसराज : *इसे भाग कर भर लाओ हरि!*

[और वह बड़ी सुकोमल अभिरुचि का सात्विक, परहेजगार कवि, जिसे सिगरेट और शराब के नाम ही से घबराहट होती थी, लपक कर चिलम ले लेता है और रसोई घर की ओर जल्दी से बढ़ता है।]

बसंतलाल : (खाली हुक्के को गुड़गुड़ाते हुए, दीनदयाल से) *सुन्दर आवरणों में आवृत्त, मात्र दिखावे की इस सभ्यता में वह निजत्व कहाँ? इसने तुम से तुम्हारा अपनापन छीन लिया है। तुम, तुम कहाँ हो? भाषा तुम अपनी नहीं बोलते, चाल*

तुम अपनी नहीं चलते, वेशभूषा तुम्हारी अपनी नहीं। तुम्हारा जो कुछ है दूसरों का है। दूसरों के लिए है।

(देव के हाथ में की बोतल की ओर देखते है ।)

डा० हसराज : *देव इधर लाओ!*

बसंतलाल . *नहीं रहने दो, मै होश खोदूँगा।*

दीनदयाल : *तुम सा पयक्कड एक बोतल मे होश खो देगा।*

(हँसता है ।)

बसतलाल · (मदमत्त निगाहों से उसकी ओर देखते हुए) *यह दूसरी है, सुबह से पी रहा हूँ।... . . सुन लिया . ...अब भूल कर कभी मुझे सभ्य अथवा असभ्य का ताना न देना।*

दीनदयाल : (अपने आदमी होने पर गर्व के साथ) *तुम कोई आदमी हो, शिष्टाचार तुम में नाम को नहीं।*

बसंतलाल : (तुनक कर—उसके घुटने को झकझोरते हुए) *जिसे तुम शिष्टाचार, एटीकेट (Etiquette) कहते हो, इसके चक्कर में पड़े कि गये, फिर रुकाव नहीं। प्रातः उठने के साथ ही यह शिष्टाचार गला दबा लेता है—'यह करो, यह न करो;' 'यह पहनो, यह न पहनो;' 'ऐसे चलो, ऐसे न चलो;' 'ऐसे बोलो, ऐसे न बोलो;' 'ऐसे हँसो, ऐसे न हँसो;' 'ऐसे रोओ, ऐसे न रोओ'* (हँसते हैं और खाली हुक्का गुड़गुड़ाते है।) *यहाँ तक कि तुम अपनी स्वाभाविक बोली, पहनावा, चाल, हँसी, रुदन सब कुछ भूल जाते हो।*

(खाली हुक्का गुडगुडाते हैं ।)

— : *मैंने एक युवक को देखा, जब उसने वकालत पास की तो अच्छा समझदार, मृदु-भाषी, सरल, हँसमुख युवक था—स्वाभाविक रूप से हँसता बोलता था। फिर वह आई० सी० एस० हो गया। लगे शिष्टाचार और सभ्यता उसका गला दबाने—एक पार्टी में मैंने उसे देखा—बस उसमें शिष्टाचार और सभ्यता ही थी और कुछ न था।—*

न वह भाषा न स्वर, न हँसी न बोली, न चाल न ढाल— उसका अस्तित्व तक कृत्रिम नज़र आता था—मुझे उस साले पर दया हो आयी।

(खाली हुक्के को गुडगुडाते और ज़ोर से चीखते हैं।)

— : *अरे हरि मर गया चिलम के साथ वहीं!* (फिर दीनदयाल से) *और फिर सभ्य-समाज के इन नियमो का अन्त कहाँ है? ज्यों ज्यों सभ्य से सभ्यतर समाज में जाओ, 'ऐसे करो' 'ऐसे न करो' की बेड़ियाँ अपने पाँवों में बढ़ाते जाओ— मेरा तो ऐसी सभ्यता में दम घुट जाय।*

(हरिनाथ चुपचाप आकर चिलम रख देता है।)

डा० हंसराज : *पिता जी ने फ़ैसला किया है कि तीस हजार के ख़र्च से एक विशाल व्यायामशाला खोलेंगे।*

दीनदयाल : *लेकिन तुम्हारे इन डंड बैठकों और 'सौंधी पक्की' से होगा क्या? लोग तोपें और तलवारें ......*

बसंतलाल : (देव से लेकर थं.डा सा और पेय कठ में उँडेल कर और देसराज का हाथ थाम कर उसे सुभ्राते हुए) *तोपें-तलवारें क्या भगोड़े चला सकेंगे? उनके लिए मानसिक और शारीरिक बल की आवश्यकता है। शरीर में बल हो, मन में साहस हो तो लाठी की जगह तलवार, बंदूक तथा तोप ले सकती है और कुश्ती की जगह युद्ध!*

दीनदयाल : *लेकिन महात्मा गांधी तो अहिंसा का प्रचार कर रहे हैं।*

बसन्तलाल : (हाथ छोड कर उसका कधा पकड़ते हुए) *महात्मा गांधी की अहिसा बलवानों की अहिंसा है, ठोस आदमियों की अहिसा है, भगोडों या हीजडों की अहिंसा नहीं। मैं अपने बेटों के नाम बीस बीस हज़ार रुपया लगाने जा रहा हूँ और मैं चाहता हूँ कि उस रुपये को पाकर भी वे अपना निजत्व कायम रखें।*

[बोतल से काफी बडा पैग भर कर एक ही बार पी लेते है और कुर्सी पर पीछे को लेट जाते है, टाँगें भी उठाकर कुर्सी पर रख लेते हैं, आँखें बन्द कर लेते है और मौन रूप से हुक्का गुडगुडाते है ।]

डा० हंसराज : (घूम फिर कर पुन: मतलब की बात पर आते हुए) *परन्तु गुरु का भी तो बताइए, वह कम से कम एम० ए० तक पढेगा और मेरी प्रबल इच्छा है कि वह आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में बैठे !*

बसन्तलाल : (वहीं लेटे लेटे) *दस हज़ार उसके नाम लिख दो !*

डा० हसराज : *लेकिन अभी आपने कहा था कि आप हरेक के नाम बीस हज़ार रुपया लगा देंगे ।*

गुरु : *और फिर इन सब की पढ़ाई पर तो इतना खर्च आया है, मेरी.....*

बसन्तलाल : *अच्छा साले...(डा० हसराज से) इसके नाम बीस हज़ार लिख दो !*

दीनदयाल : (सुअवसर देखकर) *कहो भई हरि, तुम ने उस मशीन का फ़ैसला किया है या नहीं ।*

हरिनाथ : *मेरी ओर से फ़ैसला ही फ़ैसला है । शेष सब तो पिता जी पर निर्भर है ।*

दीनदयाल : *क्यों भई बसन्तलाल, तुम इसे बड़ी सिलंडर मशीन क्यों नहीं लगवा देते ? उस खिलौने की टिच टिच में यह क्या लगा रहता हैं । देखो, इसे सिलंडर मशीन लगवा दो— अच्छा मशीन मैन रखे, अच्छा टाइप मँगाये, फिर देखो, दिनों में ही इसका प्रेस और पत्र कहाँ जाता है ।*

बसन्तलाल : (लगभग ऊँघते हुए) *कितने को आती है ?*

दीनदयाल : *आजकल तो उसकी कीमत बाईस हज़ार हो गयी है । लोहे का मूल्य दिन प्रति दिन चढ रहा है, पर मैने जो कह दिया, कह दिया । अपने वचन से बँधा मै बैठा हूँ । इतने*

दिन से मैने केवल इसके लिए ही रख छोडी है। हरि ने इच्छा प्रकट की थी। किन्तु यदि और दस दिन यह मशीन पडी रही तो उसका मूल्य दुगुना हो जायगा, फिर मै विवश हो जाऊँगा और तुम भी बसन्तलाल, फिर मुझे कुछ न कहना।

बसन्तलाल : (नशे की झोंक मे) बाइस हज़ार का चैक दीनदयाल के नाम काट दो।

डा० हसराज : लेकिन इस बाइस हज़ार से क्या होगा? सिलंडर मशीन आयगी तो क्या टाइप वही घिसा हुआ रहेगा, जिसकी मात्राएँ छोड, शब्द के शब्द उड जाते है, और फिर काम बढाने के लिए हाथ मे क्या पूँजी न चाहिए?

दीनदयाल : मैं कहता हूँ बसन्तलाल, इन एक दो महीनों में तुम ने लगभग एक लाख रुपया उड़ा दिया है। उस दिन तुमने उस उठाईगीर ब्राह्मण को दो हज़ार रुपये तीर्थाटन के लिए दे दिये।

बसन्तलाल : वह बडा श्रेष्ठ व्यक्ति था।

डा० हसराज. पिता जी सा दिल रखने वाला लाखों में—मै कहता हूँ—लाखो मे क्या, करोडों मे कोई विरला ही मिलेगा। चचा जी, आपसे क्या छिपा है—एक दिन घर में कुछ तंगी थी। माँ किसी से बीस रुपये उधार लायीं। वे सब पिता जी ने एक 'श्रेष्ठ व्यक्ति' को दे दिये। श्रेष्ठ व्यक्तियों की जो पहचान इन्हें है, वह किसे होगी?

दीनदयाल : तीन चार हज़ार टाइप के लिए चाहिए। फिर, प्रूफ़ निकालने वाला प्रेस भी तो ख़रीदना पडेगा, और काटने वाली मशीन भी और दस एक हज़ार रुपया हाथ मे चाहिए, नहीं तो छापाखाना सफ़ेद हाथी बन जाता है।

डा० हंसराज : मैं पैंतीरा हज़ार लिखने लगा हूँ।

बसन्तलाल : तुम सैंतीस हज़ार लिख लो।

[उठकर गिलास देव के हाथ से लेते है । सैतीस हजार का नाम सुन कर कवि हरिनाथ का चेहरा दुगुना हो जाता है, विद्युत् की सी तेजी से इधर उधर वह देखता है कि वह क्या कर सकता है, जी उसका चाहता है कि अपने इस पिता के पाँवों से लिपट जाय, जब कुछ नहीं सूझता तो गिलास अपने पिता के हाथ से लेकर और बोतल देव के हाथ से लेकर, वह बडी तत्परता से, मदिरा ढालकर, गिलास अपने पिता को देता है ।]

बसन्तलाल : (गिलास दीनदयाल की ओर बढाकर) *अरे तुम ने लिया ही नहीं, मै तो भूल ही गया, लो न* (और आगे बढाते हुए) *लो !*

दीनदयाल : (लालसामरी दबी-दृष्टि से गिलास की ओर देखकर) *नहीं... नहीं.....*

बसन्तलाल : (बरबस गिलास उसके हाथों में देते हुए) *अरे लो ।*

दीनदयाल : (गिलास को एक ही घूट में ख़ाली करके और पेय की कड़ुवाहट के कारण तनिक खाँस कर और रुमाल से मुँह साफ करके) *तुम्हें तो पता है, मै रवि और मंगल के दिन नहीं पीता ।*

बसन्तलाल : (अपने लिए पैग बनाते हुए) *और ये साले कहते है कि तुम शराबी हो ।* (गिलास खाली करके अपने पुत्रों को सम्बोधित करते हुए) *देखो कितना सयम है दीनदयाल में ! मंगल और रवि के दिन यह बिलकुल नही पीता* (शून्य में हाथ से घेरा बनाते हुए) *यह इस युग का राजा जनक है, धन और ऐश्वर्य्य में रहते हुए भी सर्वथा निर्लिप्त !*

[पीछे की ओर लेट जाते हैं ।

चचा चाननराम प्रवेश करते है । डाक्टर हसराज और दूसरे भाई उठकर 'नमस्ते' करते हैं ।

चचा चाननराम पंडित बसन्तलाल के पाँव छूते हैं ।]

बसन्तलाल : (उठकर आशीर्वाद देते हुए) *चिरंजीव रहो* (फिर अपने पुत्रों से) *एक तुम हो कि अपने शिष्टाचार और सभ्यता को*

लिये फिरते हो। बड़ो का सत्कार इस तरह किया जाता है। नकल उतारते हुए—'चचा जी नमस्ते'—साले नमस्ते के—प्रणाम करो सब !

[फिर टाँगें तिपाई पर रख लेते है और पीछे को लेट जाते है । सब भाई बारी बारी चचा चाननराम के घुटनों को छूते है । और वे 'चिरजीव रहो', 'चिरजीव रहो' कहते हुए दीनदयाल के साथ वाली कुर्सी पर डट जाते है ।]

चाननराम : (नये मिले सत्कार से फूल कर, बैठते ही) *मैं कहता हूँ, अब जगह ख़रीदने और कोठी बनवाने का पचड़ा मोल लेने की ज़रूरत नहीं।*

(डा० हंसराज प्रश्नसूचक-दृष्टि से देखते हैं ।)

— : *तीस हज़ार में बनी बनायी कोठी मिल सकती है, मेरा मित्र है लज्जाराम कमीशन-एजेंट। उसने मुझे उस कोठी का पता बताया है। गैरेज है; लान है; ड्राइंगरूम है; दस कमरे हैं; सुन्दर गुसलखाना हैं; फ्लश सिस्टम का पाखाना है, छोटी सी बैडमिटन कोर्ट है, मैं कहता हूँ, क्या नही, और फिर इर्द गिर्द चार दीवारी है—चाहो तो मज़े से वहाँ अखाडा बनवा लो, मुगदर रख लो !*

बसन्तलाल : *बस वह कोठी ले लो... ..*

डा०हसराज : *मै देख लूँ !*

बसन्तलाल . *देखने की क्या जरूरत है, चाननराम ने जो देख ली है।*

चाननराम : *मेरे मित्र लज्जाराम ने कहा कि पं० बसन्तलाल के लिए उस से अच्छी कोठी सारे लाहौर में कहीं नहीं मिल सकती और दुनिया इधर की उधर हो जाय, मेरा मित्र झूठ नहीं बोल सकता।*

दीनदयाल : *साधारण दलाल से जो वह इतना बड़ा कमीशन-एजेन्ट बन गया है कि दो दो कारें उसके दरवाज़े पर खड़ी रहती हैं,*

यह सब उसकी सत्यवादिता ही का तो चमत्कार है।

डा०हंसराज : बहर हाल मै तीस हज़ार का चैक कोठी के खाते काट रखता हूँ, पर पहले मैं उसे देखूँगा ज़रूर।

चाननराम : मेरे मित्र लज्जाराम ने मुझे रियायती दाम बताये हैं।

बसन्तलाल : लज्जाराम बडा श्रेष्ठ व्यक्ति है।

दीनदयाल : इसमें क्या सन्देह है।

चाननराम : (डा० हसराज से) और कहो बेटा, तुमने कौन की जगह अपने काम के लिए पसन्द की ?

डा०हंसराज : (फिर अपने पिता के पाँव दबाते हुए) जगह तो मैंने पसन्द कर ली है और आप भी पसन्द कर लेंगे। माल पर है, और बिलकुल अलग है, पर किराया वे छै महीने का पेशगी माँगते है।

चाननराम : हाँ किराया तो माँगेंगे ही। पर क्या डर है, यदि जगह अच्छी हुई तो दे देना। कहाँ है ?

डा० हंसराज : अजी वही जो हालरोड और मालरोड के चौराहे पर है।

चाननराम : (लगभग उछल कर) चौराहे पर— तब तो मेरे मित्र लज्जाराम ने ठीक ही कहा था, टैम्पलरोड के बिलकुल पास ! वहीं वह कोठी है, जिसका मैंने जिक्र किया।

डा०हसराज : बेहद मौके की जगह है—एक ओर माल है दूसरी ओर हाल। छोटा सा लॉन आगे है, गैरेज भी है, और मोटर के लिए गोल मार्ग बना हुआ है। (धीरे से) प्रैक्टिस जमाने के लिए मोटर तो रखनी ही पड़ेगी।

चाननराम : किराया क्या है ?

डा० हंसराज : तीन सौ रुपया मासिक !

चाननराम : ऐसी कोठी का तो साल भर का किराया पेशगी दे देना चाहिए।

बसन्तलाल : (जो इस बीच में नशे में गुट पड़े रहे हैं) दो साल का पेशगी दे दो !

दीनदयाल : (जो शायद चुप बैठा बैठा ऊब गया है और जिसे सहसा अपनी मशीन के बेचने का ख्याल आ गया है ।) जगह भी तो माल पर है ।

डा० हंसराज : और वहाँ दस एक बिस्तर भी आ सकते है—बीमारो के— मैं जो सेनीटोरियम खोलना चाहता हूँ, उसकी नींव इसी तरह तो पडेगी । खास खास रोगियों का उपचार मै वहाँ किया करूँगा । और अपनी प्रसिद्धि के लिए अपनी सेवाएँ किसी फ़्री अस्पताल को फ़्री* दे दूँगा । डा० लूम्बा क्या करता है ? राधेश्याम फ़्री अस्पताल में उसने अपनी सेवाएँ फ़्री दे रखी है, पर आपरेशन जो वह करता है, उनमें से ७५ प्रतिशत सीधे स्वर्ग के पास्पोर्ट सिद्ध होते हैं । किन्तु इसी तरह तो अनुभव प्राप्त होता है । और आप देख लीजिएगा, कल लूम्बा शैतान की भाँति प्रसिद्ध हो जायगा । जिसके हाथों कम के कम सौ आदमी मुक्ति न पा जायँ, वह सर्जन कैसा !

चाननराम : तुमने कृष्ण के सम्बन्ध में भी कुछ सोचा ?

डा० हंसराज : मै उसे अपने साथ रखूँगा । शुरु, शुरु, में उसका उत्साह बढाने के लिए जो आप कहेगे, दे भी दूँगा । और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, मेरे साथ यदि वह दो वर्ष रह गया तो निपुण सर्जन बन जायगा ।

चाननराम : वह स्वयं होशियार है । कालेज में प्रोफ़ेसर उसकी प्रशसा करते थे । वह तो कहता था— मुझे अलग से दुकान खोल दो ! पर मुझ में हिम्मत नहीं ।

डा० हसराज : सब कुछ पिता जी पर निर्भर है, मैं आपकी भरसक सहायता करुँगा । कृष्ण......

बसन्तलाल : (खुमारी से जागते हुए) कृष्ण बड़ा श्रेष्ठ लड़का है ।

* निशुल्क ।

(आँखे बन्द किये हुक्का गुडगुडाते है ।)

चाननराम : आप भाई साहब, हस को मालरोड पर दुकान क्यों नहीं खुलवा देते। अब मौके की जगह मिल रही है, फिर कौन जाने वर्ष भर जगह न मिले। वहाँ दुकान खोलते ही हंस का नाम प्रान्त भर में प्रसिद्ध हो जायगा।

बसन्तलाल : (पूर्ववत् आँखे बद किये) तो खोल लो वहाँ ?

चाननराम : खोल कैसे लें ? कल आप तो रुपया उड़ा दें और इसके लिए उस दुकान का किराया देना कठिन हो जाय। देखो भाई, हस के नाम तीस चालीस हज़ार रुपया लगा दो।

डा० हसराज : तीस चालीस हज़ार से क्या होगा (दीनदयाल से) क्यों चचा जी, सामान तो आपके यहाँ से ही आयगा। माल पर दुकान जमाने के लिए बीस हज़ार तो सामान ही पर लगाना पडेगा और फिर कार भी रखनी पडेगी और शोफ़र भी और नौकर भी।

[पडित बसन्तलाल उठकर देव की ओर हाथ बढ़ाते है। डा० हसराज गिलास में काफी पेय डाल कर उनको देते है।]

— : (अपनी बात जारी रखते हुए) कम से कम पचास हज़ार तो मुझे दिया जाय।

चाननराम : पचास हज़ार से कम मे कैसे काम चल सकता है।

दीनदयाल : माल पर लाख भी लग जाय तो अधिक नहीं।

बसन्तलाल : (गिलास खाली करके मूछे पोंछते हुए) तो पचास हज़ार लिख लो ! (गिलास मेज पर पटक कर पीछे, लुढ़कते हुए) देव कुछ गाओ !

(देव चुप रहता है।)

— : (उसी प्रकार नशे में आँखें बद किये कडक कर) गाओ !

देव : जी मैं.....

बसन्तलाल : *मै कहता हूँ गाओ !* (जोर से हवा में हाथ घुमाते है, हुक्का गिर जाता है, और चिलम दूर तक लुढकती चली जाती है) *गाओ !*

(अत्यन्त बेसुरे तौर पर देव गाना आरम्भ करता है ।)

'ओ जीने वाले. . . हँसते हँसते जीना !'

बसन्तलाल : (उठकर झूमते हुए) *चल साले, तू क्या गायेगा ? मैं गाता हूँ ।*

डा० हंसराज : (हस्ताक्षर करने के लिए चैक बुक अपने पिता के सामने करके फाउंटेनपेन उनके हाथ में देते हुए) *पिता जी जब गाया करते थे तो उनका स्वर मीलों तक लहराता चला जाता था ।*

[सब चैकों पर हस्ताक्षर करके, बंतल का शेष पेय गले में उँडेल कर, लडखडाते हुए पडित बसन्तलाल उठते हैं और थथलाती, लेकिन अत्यन्त सुरीली और ऊँची आवाज मे गाना शुरू करते हैं ।

'दे डारो राधे रानी बासुरी मोरी'

किन्तु उनका स्वर फट जाता है और वे लडखडाते हुए कुर्सी पर गिर पडते हैं ।]

— : *जब मैं स्कूल में पढता था तो कृष्ण बना करता था, और मेरा स्वर.. ...पर अब इस साली शराब ने मेरा सत्यानाश कर दिया है । मेरा स्वर नही रहा, मेरा कंठ नही रहा, मेरी देह नही रही ।* (सहसा कठ भर लाते है ।) *देखो बेटा, इस साली को मुँह न लगाना, इस साली ने.....*

[हुक्के को हाथ से टटोलते हुए नशे में बेहोश हो जाते हैं ।]

डा० हंसराज : *ये तो गुट हो गये !*

बसन्तलाल : (उठने का विफल प्रयास करते हुए) *कौन कहता है ? मै अभी पूरी की पूरी बोतल चढा सकता हूँ । दीनदयाल आओ...*

दीनदयाल : (उठता हुआ) *तुम्हें तो मालूम है, मैं मंगल और रवि के दिन नहीं पीता ।*

बसन्तलाल : *आओ साले .....*

(फिर मदहोश हो जाते हैं । पर्दा गिरता है ।)

(पर्दा धीरे धीरे उठता है।)

[सामने स्टेज पर अँधेरा है, किन्तु प्रकाश से सहसा अधकार में आने पर यद्यपि आँखें कुछ भी नहीं देख पातीं, पर उससे तनिक अभ्यस्त होने पर वे देखना आरम्भ कर देती है । और फिर यहाँ तो सामने के दरवाज़ों के शीशे अन्दर के प्रकाश के कारण चमक रहे हैं। इसलिए कुछ कुछ दिखायी देने लगता है।

सामने एक बरामदा है, वह हमारा पूर्व-परिचित बरामदा है या कोई और, यह बात निश्चय के साथ नहीं कही जा सकती। सामान उसमें कुछ नहीं और शायद इसीलिए कुछ खुला-खुला-सा दिखायी देता है, केवल एक ओर एक चारपाई बिछी नज़र आती है और अंधकार से तनिक और अभ्यस्त होने पर हम देखते हैं कि उस पर कोई सोया हुआ भी है।

एक-दो बार कुछ अव्यवस्थित से खुर्राटों की आवाज़ भी आती है, फिर खामोशी छा जाती है।

फिर दो छायाएँ स्टेज पर आती हैं।]

एक : *नहीं नहीं चचा जी, आप हमारी ख़ातिर यह कष्ट न*

कीजिए, भला मैं यह कैसे सहन कर सकता हूँ कि हमारे लिए आपको चार पाँच हजार की हानि सहन करनी पडे। आप उस मशीन को बेच दीजिएगा।

दूसरी : किन्तु इतनी सस्ती और अच्छी मशीन आप लोगो को इतने सस्ते मे हाथ न आयगी और फिर और दस दिन तक उसकी कीमत दुगनी हो जायगी।

[आवाज से हम जान लेते है कि ये दो छायाएँ डा० हसराज तथा दीनदयाल के अतिरिक्त कोई नहीं।]

डा० हंसराज : (गम्भीरता के आवरण में आवृत्त व्यंग्य से) तो मेरी राय में आप उसे अभी और दस दिन तक रख छोड़ें, जब उसकी कीमत दुगनी हो जाय तो उसे बेच डालें ... ..

दीनदयाल . मुझे तो प० बसन्तलाल का ख़याल था।

डा० हंसराज: उनका खयाल अब आप छोड़ दें। आपने उनका पहले ही कम ख़याल नहीं रखा।

दीनदयाल : (व्यंग्य को सुना अनसुना करके) परन्तु हरि . ....

डा० हंसराज : हरि का अभी प्रेस को विस्तार देने का कोई इरादा नही।

दीनदयाल : पर तुम ने .....

डा० हंसराज : हाँ मैने तो कहा था, पर हरि ठहरा अस्थिर चित्त का व्यक्ति! तब उसका विचार था कि प्रेस चलायगा, बढायगा, अब मैं देख रहा हूँ कि वह पहला भी बेच कर कही काश्मीर, नैनीताल जाने की सोच रहा है। कवि तथा पागल को तभी तो विद्वानों ने एक उपाधि दी है।

दीनदयाल : (वंश का शुभचिन्तक) समय बडा कठिन है। ऐसे वक्त तुम उसे किस प्रकार यों बेकार आवारागर्दी करने की सलाह दे सकते हो, मेरे पास जो मशीन है... .....

डा० हसराज : लेकिन चचा जी, मशीन को लेकर वह करेगा क्या? कागज़ तो बाजार में मिलता नहीं। जितना काग़ज निकलता है, वह तो सरकार अपने दफ्तरों के लिए ले

जाती है—और दफ्तरो में आप जानते हैं, दो पक्तियाँ लिखनी हों तो पूरा फुलस्कैप का कागज नष्ट कर दिया जाता है—बाहर से कागज आता नही। बडे बडे पुराने जमे हुए छापेखानों के स्वामी अस्थायी रूप से काम बन्द करने की सोच रहे है, फिर बेचारा हरि तो इस झझट को पहले ही चला नही पाता।

दीनदयाल : खैर उसकी इच्छा! पर तुम माल पर दुकान खोल रहे थे, तुम्हे सामान चाहिए था और तुम ने कुछ भी पता नही दिया।

डा० हंसराज : मुझे युद्ध में खैमे सप्लाई करने का ठेका मिल गया है। हिस्सेदारी तो है, पर ठेका भी पाँच लाख का है।

दीनदयाल : किन्तु मैने तो तुम्हारे लिए सामान मँगा रखा था।

डा० हंसराज : (व्यग्य से) आपके दुगने हो जायँगे, कुछ दिन और रख छोड़िए!

दीनदयाल : (निरन्तर हमलों से घबराये बिना) परन्तु.....

डा० हंसराज : मै तो पहला भी बेचने की सोच रहा हूँ।

दीनदयाल : (अडिग पर आश्चर्य से) हरि भी मशीन बेचना चाहता है और तुम भी सामान बेचना चाहते हो।

डा० हंसराज : आप विश्वास कीजिए। जब इसमें लाभ ही नही तो क्या करें। वह छापेखाने में बैठा दिन भर मक्खियाँ मारा करता था और मै दवाखाने में। वह कवि है, इस लिए ज़रूरी नहीं कि एक ही व्यवसाय को गले में बाँध रखे और मै कवि नही कि सदैव एक ही व्यवसाय का ढोल पीटता रहूँ।

दानदयाल : तुम्हारी यह परस्पर-विरोधी बात मेरी समझ में नहीं आयी।

डा० हंसराज : बात यह है कि कवि स्वभावतया अस्थिर-प्रकृति का व्यक्ति होता है और किसी एक व्यवसाय को अपनाये रखना उसके

बस की बात नहीं होती, किन्तु यदि वह ऐसा करता भी है तो केवल भावुकता-वश। और फिर यदि भावुकता-वश वह एक व्यवसाय को अपना ले तो शीघ्र वह उसे नहीं छोड़ता, चाहे उसके प्राण भी क्यों न वहीं होम हो जायँ। व्यापारी आदमी निरन्तर हानि होने पर भी जहाँ एक व्यवसाय मे टिका, समझिए वह कवि हो गया। मैं शुद्ध व्यापारिक बुद्धि रखता हूँ। मैं कवि नहीं, इसलिए क्यों एक खसारे के काम को गले लगा रखूँ।

दीनदयाल : (तनिक और समीप होकर भेद भरे स्वर में) तो देखो जब तुम सामान अथवा मशीन बेचने लगो, मुझसे पूछ लेना, मै मँहगे से मँहगे दाम पर तुम दोनों की चीजें बिकवा दूँगा।

[दीनदयाल की छाया अलोप हो जाती है, एक दूसरी छाया आती है।]

— : दीनदयाल आया था?

[आवाज से हम जानते हैं कि यह डा० हंसराज की जीवनसगिनी श्रीमती कमला देवी हैं।]

डा० हंसराज : मैने उसे धता बता दी।

कमला : पर आपने तो वचन दिया था।

डा० हसराज : वचन न देता तो ये लोग पिता जी को भड़का न देते— रिश्वत.. रिश्वत.. रिश्वत! आज की दुनिया में जितने काम इससे निकलते हैं, उतने किसी से नहीं निकलते। फिर इस रिश्वत का रूप रुपया भी हो सकता है, भेंट-पुरस्कार भी, प्रशंसा भी, खुशामद भी और लूट का हिस्सा भी— ये दोनों चचा साहबान आसानी से जितना धन लूट सकते थे, लूट चुके थे। और लूटने के लिए इन्हें बहाना चाहिए था। वह बहाना उपस्थित करके मैंने इन्हें अपने और दूसरे भाइयों के मामले में चुप रहने की रिश्वत दी। दीनदयाल ने समझा हरि उसकी वह पुरानी मशीन

ख़रीद लेगा (जिसे आज आठ वर्ष से सारे लाहौर में किसी ने ख़रीद नहीं किया) और हसराज माल पर दुकान खोलेगा, तो उसे सामान सप्लाई करने के बदले गहरी रकम हाथ आयगी और चचा चाननराम ने सोचा कि उनका वह नालायक लड़का सर्जन बन जायगा—रिश्वत ! आज उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए इससे अच्छा कोई साधन नहीं, कल की बात मैं कह नहीं सकता ।

[छायाएँ लुप्त हो जाती हैं और क्षण भर के लिए स्टेज पर रोशनी हो जाती है, बरामदा ख़ाली है । एक ओर चारपाई पर कोई सोया हुआ है, उसके परेशान खुर्राटों की आवाज फिर सुनायी देती है ।

स्टेज पर फिर अँधेरा छा जाता है । दो छायाएँ एक दूसरी का पीछा करती हुई आती है ।]

एक : (आवाज गुरु की है) *नहीं माँ, मुझे तंग न करो । मैं आई० सी० एस० बनने के लिए भाग दौड़ कर रहा हूँ । यदि किसी को पता चल गया कि मेरा पिता वहाँ सब्ज़ी मंडी अथवा लंडे बाज़ार की नालियों में औंधे मुँह पड़ा रहता है तो मेरा सब भविष्य नष्ट हो जायगा ।*

[दामन छुड़ाकर भाग जाता है । माँ की छाया उसके पीछे जाती है और अनुनय के स्वर में चीख़ती है ।—]

माँ : *पुत्र, पुत्र.....*

[गुरु की छाया निकल जाती है । एक और छाया प्रवेश करती है ।]

माँ : देव.....

(माँ उसकी ओर बढ़ती है ।)

देव : (बचता हुआ) *नहीं माँ, उन्हें रखना मेरे बस का रोग नहीं । मैं डरता हूँ । मुझे उनके पास बैठते हुए भय आता है । वे आज भी थप्पड़ जमाने और गालियाँ देने को तैयार*

हो जाते है। अपने यहाँ रखना तो दूर रहा, मै तो उनके पास तक नहीं जा सकता।

(कन्नी कतरा कर निकल जाता है।)

माँ. (उसके पीछे जाती हुई) पुत्र.. पुत्र.

[एक और छाया प्रवेश करती है। हाथ में बैग आदि थामे हुए।]

माँ: (उसकी ओर बढ़ती हुई) बेटा हरि, तेरे पिता की हालत...

हरि: मुझे यहाँ नहीं रहना माँ, मुझे अभी शान्ति निकेतन जाना है। (गर्व से सीना फुला कर) तुम्हें नही मालूम, मेरी ख्याति पख लगा कर उड़ चली है। मुझे जगह-जगह से निमन्त्रण आ रहे है। मै शान्ति-निकेतन अपनी कविताओं पर एक भाषण देने जा रहा हूँ। जब लोगों को पता चलेगा, मैंने किन कठिन परस्थितियों में परिवरिश पायी है, मेरा पिता कितना क्रूर तथा निर्दयी है तो वे मेरी प्रतिभा पर आश्चर्य्यान्वित रह जायँगे। आज ही मुझे शान्ति-निकेतन चला जाना है।

[तेज तेज़ चला जाता है। एक और छाया प्रवेश करती है।]

माँ: (उसकी ओर बढ़ती हुई) बेटा हस, तुम भी अपने पिता की हालत पर तरस न खाओगे तो कौन खायेगा, पुत्र.....

डा० हंसराज: मैं तुम्हें कितनी बार कह चुका हूँ कि मुझे तग न करो। क्यों बार बार मेरी जान खाती हो। यदि उन्होंने सब रुपया गँवा दिया है तो इसमे मेरा क्या दोष है, यदि वे फटे हाल रहना चाहते है तो मैं क्या करूँ।

माँ: उन्होंने तुम्हें.....

डा० हंसराज: मान लिया उन्होंने मुझे यह सब कुछ बनाया, परन्तु क्या मैं भी इस सब को उनकी भाँति गँवा दूँ। फटे हाल, तार तार कपडे लिये शराबखानों में घूमता फिरूँ, गालियाँ दूँ,

गालियाँ खाऊँ, नालियो में गिरता फिरूँ, मक्खियाँ मुझ पर भिनभिनायें और कुत्ते मेरा मुँह चाटें।

माँ : पुत्र.. ...

डा० हंसराज : मैंने क्या कुछ नहीं किया। उन्हें अच्छे बगले में, अच्छे से अच्छे कपड़ों में आवृत रखा। चूंकि शराब उनकी हड्डियों मे रच गयी है और वे उसे छोड नही सकते, इसलिए अच्छी से अच्छी शराब तक उन्हें पीने को दी, पर वे उस कोठी को पिंजरा और उस क़ीमती शराब को कुल्हिया का पानी समझते रहे। फिर मैं क्या करूँ?

माँ : पुत्र.....

डा० हंसराज : और मै चाहता क्या था? केवल थोड़ा-सा शिष्टाचार! मात्र थोडी-सी सभ्यता!! लेकिन उन्हें भरे बाज़ार ज़ोर-ज़ोर से ऊँचे बोलना, गालियाँ देना, गालियाँ खाना, पीटना पिटना और अपने यारों के साथ मस्त झूमते फिरना पसंद है—कमीज़ खुली है तो इसकी उन्हें परवाह नहीं, धोती लटक रही है तो इसकी उन्हें चिन्ता नहीं, सिर या पाँव नंगे है तो इसका उन्हें ध्यान नही—इस स्थिति में मैं उनकी क्या सेवा कर सकता हूँ। मै स्वयं उन सा तो होने से रहा और उनके साथ वही रह सकता है, जो उन-सा हो जाय।

माँ : पुत्र, आख़िर वे तुम्हारे पिता.....

डा० हंसराज : मैं किसी का पुत्र नहीं। कोई मेरा पिता नहीं। आज मैं इतनी मेहनत, इतने परिश्रम, इतनी दौड़ धूप के बाद सफलता की सीढ़ी पर चढ़ा हूँ। क्या तुम चाहती हो, मैं फिर नीचे जा रहूँ—मुझे नित नयी पार्टियाँ, नित नये डिनर देने होते हैं। कहाँ लाकर रखूँ मैं उन्हें अपने यहाँ?

माँ : किन्तु उन्हें तुम रुपये

डा० हंसराज . उन्हें रुपये देने का मतलब धनको अंधे गदे कुएँ मे फेंकना है।

रुपये का उनके समीप कोई महत्व नहीं। मिट्टी के ढेलों की भाँति वे उन्हे उछाल देते हैं। उनको दिये गये रुपये सब्ज़ी मंडी, लोहारी अथवा लंडा बाजार के शराब ख़ानों की नालियो के कीडे बनते हैं।

(चले जाते है।)

[माँ निमिष भर सिर थामे खडी रहती है, फिर डा० हसराज के पीछे जाती है कि दायीं ओर से एक और छाया आती है। माँ उसकी ओर बढ़ती है और पुकारती है :—]

माँ : कैलाश !

कैलाशपति : मुझ से तुम क्या कहती हो, इतना ही क्या कम है कि मैं उन्हें कुछ नहीं कहता। कोई दूसरा होता तो अब तक कब का पकड़ कर जेल में ठोंस देता। शराब पीकर वे इतना अँधेर मचाते है कि मेरी सब की सब व्यवस्था भङ्ग हो जाती है। उनके कारण मेरे इलाके मे मेरा कोई रोब नहीं रहा। मैं पुलिस-इंस्पेक्टर हूँ, घसियारा नहीं। किन्तु उनके कारण मेरी अवस्था घसियारों से भी गयी बीती है, भरे बाज़ार में वे मुझे आधा नाम लेकर पुकारते है, मेरे मातहतों के सामने वे मुझे गालियाँ देने लगते हैं। मैंने अपनी तब्दीली के लिए प्रार्थना की है। यदि मुझे तब्दील न किया गया, तो मुझे विवश होकर उन्हें सीखों के अन्दर देना पड़ेगा।

(चला जाता है।)

माँ : पुत्र होकर तुम अपने पिता को सीखों के अन्दर दोगे (दोनों हाथों से कनपटियों को भींजती हुई चीखती है) तुम्हे शर्म नहीं आती (धीरे से जैसे अपने आप) क्या मैंने अपनी कोख से सब कपूत जने। क्या तुम में एक भी ऐसा नहीं जो अपने माता-पिता को उनकी सब त्रुटियों, उनके सब व्यसनो के साथ अपने पास इज्जत से रख सके। पुत्र ऐब करते

है। माँ-बाप डाँटते हैं, झिड़कते हैं, किन्तु उन्हें गले से लगा लेते हैं—और तुम, जिनका एक एक अणु हमारे रक्त से बना है, जो हमारे कारण इस ऊँचाई पर चढ़े हो—अपने पिता को जेल में भेजने को तैयार हो (चीखती है)—तुम सब कपूत हो, तुम सब बेशर्म हो, लौज मैंने तुमको जना।

[गिर पड़ती है, अचेत हो जाती है, दायीं ओर से एक और छाया धीरे धीरे उसके पास आती है, उसे हवा करती है, और आवाज देती है]

वही छाया माँ!

(फिर हवा करती है।)

—. माँ

(माँ की छाया सहारे से उठती है और बैठती है।)

वही छाया · माँ

माँ की छाया : तुम कौन हो?

वही छाया मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, मैं दयालचन्द हूँ।

माँ की छाया · (गद्गद् होकर) दयालचन्द...मेरा छुटा बेटा (उसे आलिंगन में ले लेती है) कहाँ था तू (आर्द्र स्वर से) देख तेरे भाइयों ने हमें किस तरह दुत्कार दिया है। तेरे पिता दो दिन से सब्ज़ी मंडी में औंधे मुँह बेहोश पड़े है।

दयालचन्द . मै उन्हे वहाँ से जाकर उठाऊँगा, उनकी हर सेवा करूँगा।

माँ . उन्हें तीन लाख रुपया आया था। वे तुम्हें ढूँढना चाहते थे, पर सब रुपया तेरे भाइयों ने उनसे लूट लिया। तू क्या करता है, आजकल कहाँ रहता है?

दयालचन्द : मै गाड़ियों पर सोडा बर्फ़ बेचता हूँ माँ!

माँ :(अत्यधिक आर्द्र स्वर में) पुत्र!

[उसे और भी जोर से अपने आलिङ्गन में खींच लेती है, और सिसकती है।

छायाएँ लुप्त हो जाती हैं, रंगमंच पर रोशनी हो जाती है।]

[वही डाक्टर हसरत के पोर्शन का बरामदा है। सब खाना खा चुके हैं, इसलिए चटाइयाँ आदि शायद उठा दी गई हैं, कुर्सियाँ मेज भी अन्दर पहुँचा दिये गये हैं और बरामदे में केवल वही चारपाई बिछी है, जिस पर अत्यधिक मद्यपता की अवस्था में पंडित बसन्तलाल को लिटाया गया था। वे अभी तक शायद लेटे हुए हैं। क्यों कि करवट लेते समय उन की चादर खिसक जाती है, और हम उन्हें पहचान लेते हैं।

रसोई घर से अभी तक हल्का हल्का धुआँ निकल रहा है।

रोशनी होने के कुछ क्षण बाद माँ रसोई-घर से निकल कर धीरे धीरे चारपाई के पास जाती है और उन्हें हिलाती है।]

जोर से हिलाती है। पंडित बसन्तलाल हड़बड़ा कर उठते हैं।]

माँ : *ऐ जी...ऐ जी...*

माँ : *मैं कहती हूँ, दो बजने को आये हैं। उठो, उठकर कुछ खा पी लो, मुझे भी दो कौर निगलने है।*

बसन्तलाल : (निद्रित तथा पूर्ववत् अथलाती हुई आवाज में) *मैं पूछता हूँ दयालचन्द !*

माँ : (आँखों में चमक आ जाती है) *दयालचन्द !*

बसन्तलाल : *मेरा छठा बेटा !*

[तभी उनकी दृष्टि धरती पर गिरे हुए लाटरी के टिकट पर चली जाती है। वे उसे उठा लेते हैं, उसे आँखों के पास ले जाकर पढ़ते हैं। तभी सब कुछ उनके सामने साफ हो जाता है। सिर झुक जाता है और एक दीर्घ-निश्वास उनके ओंठों से निकल जाता है।]

(पर्दा सहसा गिर पड़ता है।)

समाप्त